वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५८ अंक ८
अगस्त २०२०

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक ८

वार्षिक १६०/–　**एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में आवरण पृष्ठ में दर्शाया गया स्वामी विवेकानन्द का आकर्षक चित्र रामकृष्ण मिशन, कटक, उड़िसा का है।

अगस्त माह के जयन्ती और त्योहार

०३ स्वामी निरंजनानन्द, रक्षाबन्धन
११ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१५ स्वतन्त्रता दिवस
१८ स्वामी अद्वैतानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री लक्ष्मीनारायण दास, रायपुर (छ.ग.)	५,०००/-
श्री संजय पाण्डेय, नई दिल्ली	५,१००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६११.	श्री केवल राम कौशिक, काठी रोड, बैतुल (म.प्र.)	शा. महाविद्यालय, कोतरी, वाया-लोरमी, मुंगेली (छ.ग.)
६१२.	श्री बसन्त कुमार आसोपा, टोंक (राजस्थान)	राजकीय सार्वजनिक जिला पुस्तकालय, श्रीगंगानगर (राज.)

वर्ष ५८ अगस्त २०२० अंक ८

श्रीकृष्ण-स्तुतिः

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये।।
त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूहमाना निहनिष्यसे चमूः।।

– आप ही तीनों लोकों की रक्षा करने के लिये अपनी माया से सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्ति के लिये रज:प्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलय के समय तमोगुण प्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं।

प्रभो! आप सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं। इस संसार की रक्षा के लिए आपने मेरे घर अवतार लिया है। आप कोटि-कोटि असुर सेनापतियों को, जो अपने को राजा कहते हैं और उनकी बड़ी सेनाएँ हैं, आप उन सबका संहार करेंगे।

पुरखों की थाती

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वा स्यात्कस्य स्यान्न महोदयः।।६९२।।

– कोई भूल हो जाने पर बाद में जो पछतावा होता है, यदि किसी में वैसी बुद्धि कर्म के पहले ही आ जाय, तो वह महापुरुष के अतिरिक्त भला कौन होगा? (चाणक्य)

दाने तपसि शौर्ये च विज्ञाने विनये नये।
विस्मयो न हि कर्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा।।६९३।।

– इस संसार में दान, तप, शौर्य, ज्ञान, विनयशीलता तथा धर्म के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक रत्न मिल जाते हैं, अत: मनुष्य को इस विषय में विस्मय नहीं करना चाहिये, क्योंकि वसुन्धरा असंख्य रत्नों से परिपूर्ण है।

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्मलेपनैः।।६९४।।

– जिस मनुष्य का चित्त समस्त प्राणियों के लिए करुणा से द्रवित हो जाता है; उसके लिये ज्ञान, मोक्ष, जटाजूट तथा भस्म-लेपन आदि की कोई आवश्यकता नहीं।

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चाऽनृणी भवेत्।।६९५।।

– गुरु एक ही अक्षर के द्वारा शिष्य को जो ज्ञान देता है, संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे देकर उनके ऋण का शोध किया जा सके।

भक्तवत्सल श्रीकृष्ण का हुआ दिव्य अवतार

एक लोकश्रुति है कि भगवान श्रीकृष्ण से एक भक्त ने पूछा – प्रभो! आपके बहुत से पुण्यात्मा, दानी, तपस्वी, धर्मपारायण भक्त हैं, जो अपनी साधना – पुरुषार्थ, भक्ति और समर्पण के द्वारा आपके पास पहुँचते हैं। मैं जब अपना आत्ममन्थन करता हूँ, आत्मविश्लेषण करता हूँ, तो अपने को किसी के सदृश नहीं पाता।

भगवान ने कहा – ऐसी बात नहीं है कि केवल उपरोक्त लोग ही अपनी साधना दान-पुण्याचरण से मेरे पास तक पहुँचते हैं। मैं स्वयं भी सशरीर अपनी सन्तानों तक पहुँचता हूँ। देखो न, माँ यशोदा को वात्सल्य-सुख का सौभाग्य प्रदान करने के लिए वन्दीगृह में अपनी जननी देवकी माता को छोड़कर मैं स्वयं ही उनके पास पहुँचा। गोपियों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने, उन सबका माखन खाने मैं स्वयं उन सबके घर गया। यहाँ तक कि उन सबका माखन चुराकर भी खाया। कालियनाग को कृतार्थ करने मैं स्वयं पहुँचा। ग्राह से गजराज का त्राण करने मैं स्वयं पहुँचा। द्रौपदी की लज्जारक्षार्थ चीर बढ़ाने मैं स्वयं पहुँचा। अर्जुन को भीष्म से बचाने चक्र लेकर मैं स्वयं दौड़ा। शर-शय्याशायी भीष्म को दर्शन देने मैं स्वयं पहुँचा। मैं त्रिलोक का स्वामी हूँ। मेरी इच्छा मात्र से लोककार्य सम्पन्न हो जाते हैं। मेरे वरदहस्तसंयुक्त मेरे द्वारा प्रेषित कोई भी दूत इन कार्यो को कर सकता था। लेकिन विभु रूप में सर्वव्यापी होने पर भी मैं स्वयं सशरीर वहाँ गया।

भक्त ने कहा – प्रभो! मैंने तो पहले ही कहा कि मैं साधनाहीन और असमर्थ हूँ। मुझमें न तो बालक के समान सरलता है, न ऋषि-मुनियों के समान तप है, न गोपियों के समान प्रेम है, न अर्जुन के समान शरणागति और आज्ञा-पालन है, न भीष्म के समान भक्ति है, न द्रौपदी के समान आर्त पुकार है। यहाँ तक कि ठीक इसके विपरीत मैं अपने को काम-क्रोध-लोभादि शत्रुओं और प्रमाद से ग्रस्त पाता हूँ। मैं आपका सान्निध्य चाहता हूँ, आपका दर्शन चाहता हूँ, किन्तु अपने को सर्वथा अयोग्य पाता हूँ। तब क्या आप मुझे अपना सान्निध्य प्रदान करेंगे? क्या आप अपना दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करेंगे?

भगवान ने कहा – तुममें वैसी क्षमता नहीं है, किन्तु तुम सर्वथा अयोग्य हो, ऐसी बात भी नहीं है। मैंने तो यहाँ तक कहा है कि यदि किसी के पास अन्न-धन नहीं है, तो वह पत्र-पुष्प या जल मात्र भी श्रद्धा-भक्ति से मुझे प्रदान कर दे, तो मैं उसे प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (गीता ९/२६)

यदि तुम मुझे निरन्तर नहीं पुकार सकते, तो कम-से-कम एक बार मन से बुला लो, मैं चला आऊँगा। जैसे कोई बालक माता-पिता को भूलकर क्रीड़ा में मग्न रहता है, किन्तु जब वह गिर जाता है या उसे कोई मारता है अथवा खेल के समाप्त होने पर सभी बच्चे उसे छोड़कर भाग जाते हैं और वह भयभीत होकर बड़े आर्तभाव से 'माँ' कहकर पुकारता है, तो माँ जहाँ भी होती है, बालक की पुकार सुनते ही सारा काम छोड़ दौड़ते हुए आकर उसे गोद में उठा लेती है। बच्चा निश्चिन्त हो जाता है। मैंने भी अपनी सन्तानों से कहा है – यदि कोई विशेष साधना, भजन-कीर्तन नहीं कर पाता, तो केवल एक बार मुझे अपना मानकर सच्चे मन से पुकार लो, मैं स्वयं दौड़कर तुम्हारे पास चला आऊँगा, तुम्हें गोद में ले लूँगा, मेरे शाश्वत अंक को पाकर तुम सदा

के लिए निर्भय निश्चिन्त हो जाओगे – **सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**

जब मानव मायावश भगवान की इस अमोघ वाणी को भूल जाता है और इस भवाटवी में विभिन्न प्रकार के कष्ट भोगने लगता है, तब करुणामय भक्तवत्सल प्रभु कृपा कर उसे अपना प्रत्यक्ष सान्निध्य देकर उसे सत्पथ पर लाने के लिये भावी पीढ़ियों के लिए शताब्दियों तक की आध्यात्मिक सम्पदा प्रदान करने इस धरा पर अवतार लेते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतार के कई कारण हैं, जिसका वर्णन माता कुन्ती द्वारा की गई श्रीकृष्ण की स्तुति में मिलता है। वे कहती हैं –

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः।।
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः।

(श्रीमद्भागवत १/८/२०,२१)

– आप शुद्ध हृदयवाले जीवनमुक्त परमहंसों के हृदय में अपनी प्रेममयी भक्ति का सृजन करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं। श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द गोप के प्रिय पुत्र गोविन्द को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ।

माता कुन्ती आगे कहती हैं –

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम्।।
अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम्।।
भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः।।
भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन।।

(श्रीमद्भागवत १/८/३२-३५)

(आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया, इसका कारण बताते हुए) कोई-कोई महापुरुष ऐसा कहते हैं कि जैसे मलयाचल की कीर्ति का विस्तार करने के लिए उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्ति का विस्तार करने के लिए ही आपने उनके वंश में अवतार ग्रहण किया है।

दूसरे लोग कहते हैं कि वासुदेव और देवकी ने पूर्वजन्म में (सुतपा और पृश्नि के रूप में) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत के कल्याण और दैत्यों के नाश के लिये उनके पुत्र बने हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्यों के अत्यन्त भार से समुद्र में डूबते हुए जहाज की तरह डगमगा रही थी, पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्मा की प्रार्थना से उसका भार उतारने के लिये ही प्रकट हुए।

कोई महापुरुष कहते हैं कि जो लोग इस संसार में अज्ञान, कामना और कर्मों के बन्धन में जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगों के लिये श्रवण और स्मरण करने योग्य लीला करने के विचार से ही आपने अवतार ग्रहण किया है।

जब भगवान श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से द्वारिका के लिये प्रस्थान कर रहे थे, उस समय उनके दर्शन की अभिलाषा से कुरुवंश की नारियाँ अटारियों पर चढ़कर देख रही थी और श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए आपस में कह रही थीं –

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे।।

– जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्म से जीवन-यापन करने लगते हैं, तब ये (श्रीकृष्ण) ही सत्त्वगुण को स्वीकार कर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते और संसार के कल्याण के लिये युग-युग में अनेकों अवतार ग्रहण करते हैं।

ऐसे लोकहिताय ईश्वरावतार भगवान श्रीकृष्ण के अवतार के कई प्रयोजन हैं। उनकी लीलाओं के श्रवण-चिन्तन-मनन से जीव कल्मषरहित और उनकी भक्ति प्राप्त करता है। कुन्ती माता ने दुख में ही सदा उनके सान्निध्य का अनुभव किया था, इसलिये वे बार-बार उनसे दुख ही माँगती हैं –

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

शौर्य-वीर-त्यागैश्वर्य सम्पन्न भगवान श्रीकृष्ण का अवतार अधर्म-अन्याय-अनीति पर विजय, धर्म-न्याय का पुनर्स्थापन एवं जीवन से निराश, थके-हारे, त्रस्त, मार्गभ्रमित मानवों के जीवन में सत्पथप्रदर्शन एवं आशा का संचार करता है। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में बेरोजगारी और गरीबी की जंजीरों से मुक्ति और देश को समृद्ध बनाने की युक्ति

स्वामी शशांकानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, पूर्णिया, बिहार

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है, जन-साधारण की उपेक्षा।'' आज जिस गति से देश आगे बढ़ रहा है, धनवान हो रहा है, उतनी ही तेजी से जन-साधारण विशेषत: गाँव पिछड़ता जा रहा है, निर्धन होता जा रहा है। राजनैतिक रूप से हम स्वतन्त्र देश होते हुए भी बेरोजगारी और गरीबी की बेड़ियों में जकड़े हुए असहाय एवं निरुपाय हैं। एक ओर शहर के युवक नौकरी की खोज में दर-दर भटक रहे हैं, तो दूसरी ओर गाँव में युवा पीढ़ी रोजगार की खोज में पलायन कर रही है। हमारे उपजाऊ खेत बंजर होते जा रहे हैं। जिस गति से देश में साक्षरता दर बढ़ रही है, उसी गति से बेरोजगारी और पलायन की समस्या भी बढ़ रही है। मूल कारण स्पष्ट है कि दोष कहीं-न-कहीं हमारी शिक्षा-व्यवस्था में हैं।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारत की दुर्दशा का मुख्य कारण है शिक्षा का अभाव। वह शिक्षा चाहिए, जो हमारे देशवासियों में आत्मविश्वास जगाये उनके अन्तर्निहित देवत्व को जगाये। आज की वर्तमान शिक्षा प्रणाली जो लार्ड मैकाले द्वारा लाई गयी थी, वह नकारात्मक शिक्षा है, जिसने हमें दासत्व सिखाया, नौकर बनने में गर्व करना सिखाया और हमारे अन्तर्निहित ब्रह्मत्व को क्षीण कर दिया। देशवासियों में उनका खोया हुआ व्यक्तित्व वापस लौटाने के लिए हमें पुन: प्रकृत सकारात्मक स्वनिर्भरता सिखाने वाली शिक्षा देश के हर कोने तक, हर गाँव के खेत में काम कर रहे युवाओं तक पहुँचानी होगी। शिक्षा से स्वामी विवेकानन्द जी का तात्पर्य वर्तमान शिक्षा-प्रणाली नहीं है। वे कहते हैं, ''गूढ़ पुस्तकों के ज्ञान-प्रसार के लिये अभी रुको। हमें वह शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र-निर्माण हो, बल-वीर्य की वृद्धि हो, बुद्धि का विकास हो और स्वावलम्बन मिले।'' ..... ''लोगों को तकनीकी शिक्षा दो जिससे उन्हें काम मिल सके और चीथड़ों में लिपटे हुए अबला की तरह वे यत्र-तत्र नौकरी के लिए रोते न फिरें।''

वर्तमान शिक्षा से प्राप्त ये सब डिग्रियाँ कुछ सामर्थ्यवान ही पा सकते हैं और डिग्रियों के जोर पर कुछ लोगों को नौकरी अवश्य मिलेगी। परन्तु बाकी जन-साधारण के लिये क्या है? जिन्हें डिग्री मिल भी गयी, पर नौकरी नहीं मिली, तो सृजनात्मक शिक्षा के अभाव में वे स्वरोजगार भी नहीं कर पाते हैं।

ऐसा क्यों हुआ? कैसे हुआ? कब हुआ? क्या आप जानते हैं? भारत देश की ८० प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है और कृषि पर निर्भर करती है। इसी कृषि एवं पशु-पालन आदि से हम समृद्धिशाली थे, किन्तु आज दरिद्रता और बेरोजगारी के चंगुल में फँसे नौकरी की तलाश में भटकते हुए, गाँव और खेती छोड़कर, भारत की उत्पादन क्षमता समाप्त कर, हरे खेतों को सूखा-पीला छोड़कर गाँवों से पलायन कर रहे हैं। क्यों आज हमारे युवक स्वरोजगार के स्वाभिमान की अनदेखी कर नौकर बनने का गर्व करते हैं? अगर नहीं जानते तो सुनिए। अँग्रेज व्यवसाय के उद्देश्य से भारत आये और इसे कूटनीति से अपने कब्जे में लेकर राज्य करने लगे, पर राज्य टिकाऊ नहीं हो पा रहा था। इसका कारण खोजने लार्ड मैकाले को भारत भेजा गया। चार वर्ष भारत का निरीक्षण कर वे ब्रिटिश पार्लियामेंट में अपनी रिपोर्ट देते हैं –

"I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a thief, such wealth I have seen in this country such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their self-esteem, their native self-culture and

they will become what we want them, a truly dominated nation".

(Lord Macaulay in his speech of Feb 2, 1835 British Parliament.)

"मैंने भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा की, परन्तु एक भी व्यक्ति चोर नहीं पाया। मैंने इस देश में इतना धन देखा, उच्च मानवीय मूल्य के प्रति सजगता और इतने योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को देखा कि मुझे नहीं लगता कि हम कभी इस देश पर विजय प्राप्त कर सकेंगे, जब तक हम राष्ट्रीय मेरुदण्ड अर्थात् इसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धरोहर को न तोड़ दें। इसलिये मैं प्रस्ताव रखता हूँ कि इनकी प्राचीन शिक्षा प्रणाली, संस्कृति को बदलना होगा। जब भारतीय लोग यह सोचने लगेंगे कि जो कुछ विदेशी और अँग्रेजी है, वह सब कुछ हमारे देश (भारत) से अच्छा और महान है, वे अपनी संस्कृति और गौरव को तुच्छ समझने लगेंगे, तब यह देश जैसा कि हम चाहते हैं, वास्तव में पराधीन देश बन जाएगा।" (लार्ड मैकाले द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में २ फरवरी, १८३५ को दिया गया भाषण)

लार्ड मेकाले अपनी योजना में सफल हुए। बाबू (क्लर्क) बनानेवाली अधिक वेतनवाली शिक्षा आई, नौकरी हमारे जीवन का लक्ष्य बना। यह नकारात्मक शिक्षा प्रणाली शहरों में फैल गयी, गाँवों की उपेक्षा हुई, ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता एवं शिक्षा का अभाव फैला। बड़े-बड़े कारखानों ने भारत के गाँव-गाँव में युगों से चले आ रहे स्वतन्त्र स्वनिर्भर उद्यम एवं रोजगारों को छीन साधारण जनता को बेरोजगार बना दिया। श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा, "जब से अँग्रेज Cotton Mill लाये, चरखे एवं करघे बन्द हो गए। कितने ग्रामवासी बेरोजगार हो गए।"

हमारा ही उत्पादित कच्चा माल अँग्रेजों के बनाए कारखानों एवं विदेशो में निर्यात होने लगे। बड़े कारखाने वाले मालिक और हम मजदूर मात्र रह गए। राजस्थान में खेतड़ी में ताम्बे के स्वरोजगार कारखाने, बंगाल के हुगली जिला आरामबाग के पास पीतल के बर्तन बनना बंद हो गए, पौधों से नील का स्थान केमिकल नील ने ले लिया, झारखण्ड में लोहे के काम बंद हो गए। दासत्व, पराधीनता बाबूगिरी की नौकरी में कुर्सी मेज पर बैठ कलम चलाना हमारा सौभाग्य बना और अँग्रेजों के सामने घुटने टेककर गिड़गिड़ाते हुए नौकरी की भीख माँगना हमारा भविष्य।

इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – "वह शिक्षा जो जन साधारण को जीवन-संघर्ष के लिए तैयार नहीं करती, जो चरित्र-विकास नहीं करती, जो परसेवा की भावना उत्पन्न नहीं करती और जो सिंह-सा साहस पैदा नहीं करती, यह भी क्या कोई शिक्षा है? वास्तविक शिक्षा वह है, जो मनुष्य को अपने पैरों पर खड़ा कर दे।"

स्वतन्त्रता के इतने वर्षों बाद भी आज भारत में जो शिक्षा प्रणाली चल रही है, वह भी नौकरी की खोज करनेवाली शिक्षा है। इस शिक्षा का उद्देश्य लोगों को परमुखापेक्षी बनाना है, न कि स्वावलम्बी बनाना। शिक्षा में इस दूरदर्शिता के अभाव ने हमारे भारतवर्ष को विनाश के पथ पर लाकर खड़ा कर दिया है। नौकरी हमारे देश की उन्नति का साधन नहीं हो सकती। कोई सरकार चाहे कितनी भी घोषणाएँ करे, किन्तु वह देश के प्रत्येक युवक को नौकरी नहीं दे सकती। भारत एक कृषि-प्रधान देश है। यह देश कभी नौकरीवृत्ति पर निर्भर नहीं रहा है। यह प्राकृतिक सम्पदा और प्राकृतिक ऊर्जा से भरपूर रहा है। हमारे देश की इस प्राकृतिक सम्पदा को सोना उगलना है, इससे धन उपार्जन होगा, इससे ही हमें स्वरोजगार मिलेगा। नौकरी सबको नहीं मिल सकती और वह सदा सुखकर और अपेक्षित विकास में सहायक नहीं होती।

भारत के विश्वविद्यालयों के उपाधिप्राप्त युवकों को स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लिखते हैं, "अब तुम क्या कर रहे हो? हाथों में पुस्तकें लिये समुद्र के किनारे सैर कर रहे हो। कुछ भी आत्मसात् किये बिना यूरोपीय मस्तिष्क और आत्मा की कृति को रटे जा रहे हो, तीस रुपये महीने का क्लर्क बनने के लिये या अधिक से अधिक आज के भारत के नवयुवकों की महत्त्वाकांक्षा - वकील बनने के लिए। ... क्या समुद्र में इतना पानी नहीं है, जो तुम्हें, तुम्हारे चोंगे और विश्वविद्यालय के प्रमाण पत्रों को डूबो दे?

"करोड़ों पिछड़े असहाय लोगों को ऊपर उठाने की चिन्ता किसे है? विश्वविद्यालय के उपाधिदार कुछ हजार व्यक्तियों से राष्ट्र-निर्माण नहीं हो सकता, कुछ धनवानों से राष्ट्र नहीं बनता। यह सच है कि हमारे पास सुअवसर कम है, तथापि तीस करोड़ (भारत की तत्कालीन जनसंख्या) व्यक्तियों को खिलाने और पहनाने के लिए, उन्हें आराम से रखने के लिए, बल्कि उन्हें विलासितापूर्वक रखने के लिए हमारे पास पर्याप्त संसाधन हैं।"

यदि हम यह पूछें कि स्वामीजी हम क्या करें? तो स्वामी जी कहते हैं, "उर्वर देश में, जहाँ प्रचुर मात्रा में जल है, जहाँ प्रकृति ने दूसरे देशों की तुलना में हजारों गुना धन और अन्न दिया है, वहाँ लोगों के पास अन्न नहीं है, शरीर ढँकने के लिये वस्त्र नहीं है। जिस देश में प्राकृतिक सम्पदा का इतना विशाल भंडार हो, जिससे अन्य देश का विकास हुआ है, वहाँ तुम लोग इतने नीचे गिर गए हो ... जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस व्यक्ति को विश्वासघाती समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता। वे लोग जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब अकड़कर चलते हैं, यदि वे उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए कुछ नहीं करते, जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं, तो वे घृणा के पात्र हैं।

"मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि किसी भी राष्ट्र का उत्थान उसकी जनता की शिक्षा और शिक्षाजनित बुद्धि है। ...अपने निम्न श्रेणीवालों के प्रति हमारा एक मात्र कर्तव्य है, उनको शिक्षा देना, उनके खोये हुए व्यक्तित्व के विकास के लिए सहायता करना। उनमें विचार पैदा कर दो – बस, उन्हें उसी एक सहायता की आवश्यकता है, और शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप स्वयं ही आ जायेगा। हमें केवल रासायनिक सामग्रियों को इकट्ठा भर कर देना है, उनका निर्दिष्ट आकार प्राप्त करना, रवा बँध जाना, तो प्राकृतिक नियमों से स्वयं ही हो जायेगा।"

यदि हम वैदिक भारत को देखें, तो उस समय लोग देश की समृद्धि और धनधान्य को दायित्व मानकर धनोपार्जन करते थे। धन से समृद्धि का रास्ता प्राकृतिक सम्पदा का दोहन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपादान बनाने की कला, शिल्प और उद्योग तथा व्यवसाय बना लिया करते थे और उसी कार्य-क्षेत्र के अनुसार जाति-विभाग हुआ करता था। जैसे कृषक, ग्वाला, गड़ेरिया, मछुआरा, कास्तकार, सोनार, लोहार, शिल्पकार, उद्योगपति, व्यवसायी, दुकानदार, वैद्यराज इत्यादि। पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिल्प कला और व्यवसाय का विकास होता रहता था। स्वरोजगार और उद्यमिता के बल पर भारत एक समृद्ध देश था। इसीलिए यह सोने की चिड़िया कहलाता था।

किन्तु आज उन्हीं ऋषियों की संतान की यह दुर्दशा? गुरुकुल में अनिवार्य शिक्षा के बाद सबसे उत्तम व्यवसाय खेती को माना जाता था। क्योंकि इसी पर भारत की समृद्धि निर्भर करती है। सबसे उत्तम व्यवसाय खेती, मध्यम वाणिज्य और नौकरी अधम थी –

उत्तम खेती मध्यम बान।
अधम चाकरी भीख निदान।।

किन्तु आज हमने इस अधम पेशे को छाती से लगाकर उत्तम पेशे को उपेक्षित कर रखा है।

मानव सम्पदा, प्राकृतिक सम्पदा का दोहन कर उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन एवं मूल्य वृद्धि द्वारा समृद्धि लाना ही उद्यम Entrepreneurship है। यह जनसाधारण का व्यवसाय नहीं बन पा रहा है। मानव सम्पदा का दोहन का किताबी ज्ञान अब विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों की सीमा में ही रह गया, जिसे सीख कर नौकरी मिल सकती है, पर उद्यम नहीं।

आप कहेंगे कृषि विश्वविद्यालय हैं, पशुपालन के महाविद्यालय हैं, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद है। परन्तु इनसे शिक्षित ये सारे डिग्रीवाले केवल नौकरी चाहते हैं। क्योंकि इनकी शिक्षा में स्वनिर्भरता, आत्मविश्वास, साहस, और इच्छाशक्ति नहीं है, इन्हें जोखिम और विपत्ति का सामना करना नहीं सिखाया जाता।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि यदि विश्व की सारी धन-राशि भारत के एक छोटे से गाँव में उड़ेल दी जाए, तो भी उसका भला नहीं होगा, यदि उन्हें अपनी सहायता अपने आप करना न सिखाया जाए। उन्हें शिक्षा देनी होगी कि वे स्वनिर्भर कैसे बनें।

एक राष्ट्र की खुशहाली उसकी उत्पादन-शक्ति पर निर्भर है। प्राकृतिक सम्पदा के दोहन से, कच्चे माल के स्रोत से उपयोगी वस्तु बनाना, उद्यमिता और स्व-निर्भरता की भावना का आना युवकों में आवश्यक है। भारत सरकार ने नियम बनाया कि Agro-Graduate (कृषि-स्नातक) गाँवों में जाकर एग्रो-सर्विस केन्द्र चलाकर स्वावलम्बी व्यवसाय करें। इसके लिए बैंक से ऋण की भी व्यवस्था थी। पर यह सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि प्रशिक्षण के बाद उन्हें नौकरी चाहिए थी।

प्रश्न है कि शिक्षा में सुधार किस तरह किया जा सकता है? हमारे देश की ८० प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है और कृषि पर निर्भर है। अत: हमें कृषि का विकास करना है। स्पष्ट है कि कृषि-प्रधान देश होने के नाते हमें गाँवों में कृषि-पशु-पालन एवं प्राकृतिक संसाधन के दोहन के तरीकों

को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने एवं विद्यालय स्तर पर ही बच्चों में कृषि उत्पाद में मूल्य-वृद्धि और मार्केटिंग के गुणों को बढ़ावा देना होगा। इससे प्रत्येक युवक अपनी शिक्षा के बाद नौकरी की बाट खोजने के बदले देश की उत्पादन क्षमता में सीधा योगदान कर सकेगा और अपने साथ-साथ सम्पूर्ण गाँव की आर्थिक उन्नति में सहयोग कर सकेगा। उत्पादित सामग्री का हमें गाँव से बाहर शहरों में और शहरों से भी दूर विदेशों में विक्रय कर धनोपार्जन करना है। इसी से हमारी दरिद्रता और बेरोजगारी की समस्या मिटेगी।

लेकिन कृषि, उद्यमिता का विकास एवं प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के वैज्ञानिक प्रणालियों, इन सबको हमारी शिक्षा-व्यवस्था में समाहित करना होगा, हमारे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना होगा, तब इस विचार को हम देश के प्रत्येक युवा तक पहुँचा सकते हैं। यदि बच्चे, खासकर गाँव के बच्चों में यह संस्कार बचपन में एक योजना के द्वारा डाले जाएँ, तो देश उद्यमिता की ओर अग्रसर हो सकता है। वर्तमान में एक विद्यार्थी स्वयं को नौकरी पाने पर सफल मानता है और उद्यमिता की बात उनके लिए है जो अपनी पढ़ाई में असफल रहे, ड्रॉपआउट रहे। इस विचार को बदलना होगा। यह भ्रान्त धारणा है कि कृषि का व्यवसाय घाटे का रोजगार है। रामकृष्ण मिशन दिव्यायन केन्द्र, मोराबादी से प्रशिक्षण प्राप्त कर एवं निर्देशानुसार उद्यम आरम्भ करने पर गाँव में ही बैठे इतना धन कमा सकते हैं, जो अधिक वेतन की नौकरी में भी नहीं मिलता।

ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों के लिये हमने एक ऐसा ही पाठ्यक्रम बनाया है, जिसमें बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से नियमित CBSE पाठ्यक्रम के अतिरिक्त प्राथमिक स्तर से ही खेती-बाड़ी एवं पशुपालन आदि सम्बन्धी शिक्षा दी जा रही है। कक्षा आठ तक एक विद्यार्थी को कृषि कौशल, पशु-पालन, लाह, मधुमक्खी पालन, तसर (रेशम-कीट), वृक्षारोपण, मृदा-विज्ञान, कृषि-उत्पाद में मूल्य-वृद्धि एवं व्यावसायिक प्रबन्धन आदि के गूढ़ तत्त्वों को आत्मसात् करने की शिक्षा दी जाएगी। खूंटी जिला के मुढ़ू प्रखंड के गुटीगढ़ा गाँव में विवेकानन्द सेवा संघ में बच्चों ने बागवानी तथा खेती में, कर्रा प्रखंड के चांपी गाँव में प्राथमिक विद्यालय के बच्चों ने मुर्गी-पालन एवं मशरूम-पालन का प्रशिक्षण लेते समय बहुत कुशलता दिखाई है।

गाँव का प्रत्येक बच्चा यदि फलों के चार-पाँच वृक्ष अपने घर में लगा ले, तो पर्यावरण को बचाने के साथ-साथ क्या कुपोषण की समस्या को हम समूल नष्ट नहीं कर सकेंगे? यदि मूल्य-वृद्धि के कौशल गाँव के लोग सीख लें, तो क्या बेरोजगारी और गरीबी का समूल नाश नहीं हो सकेगा? हमें यही करना होगा और हम ये करके रहेंगे। मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि यह संभव है। मैंने ऐसा ही एक प्रयोग अरुणाचल प्रदेश के तिरप जिला में रामकृष्ण मिशन, नरोत्तमनगर विद्यालय में किया था। कक्षा दो से लेकर कक्षा छ: के बच्चों ने बागवानी, मुर्गी-पालन, मधुमक्खी-पालन, बाँस-शिल्प, बेंत का फर्नीचर बनाने के कार्य आदि में प्रशिक्षण के समय अपना कौशल प्रदर्शित किया था। कक्षा नौ एवं दश में मृदा-परीक्षण एवं खाद का उपयोग, जल एवं सिंचाई-प्रबन्धन, कीट प्रबन्धन की जानकारी सम्मिलित रहेगी, जिससे वे गाँव में सर्विस सेन्टर खोल सकें। क्या ग्यारहवीं एवं बारहवीं में बाजार व्यवस्था (Marketing) व्यवसाय प्रबंधन (Business Mangament) सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) ग्रामीण विकास एवं प्रबंधन (Rural Development and Management) इत्यादि के बारे में शिक्षा दी जायेगी, जिससे वे स्वयं गाँव के उत्पादन का बाजार ढूँढ़कर बिक्री की व्यवस्था, यातायात के साधन और जानकारियाँ इन्टरनेट पर डाउनलोड कर गाँव के किसानों को जानकारियाँ दे सकें तथा साथ ही गाँव के बौद्धिक विकास में सहायता कर सकें, वैश्वीकरण के सकारात्मक पहलू को गाँव तक पहुँचा सकें। स्वामीजी ने कहा है कि उनमें विचार पैदा कर दो – बस, उन्हें उसी एक सहायता की आवश्यकता है और शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप अपने आप ही आ जायेगा।

आशा की वाणी : स्वामी विवेकानन्द की घोषणा

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – "मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि क्रियाशीलता और स्वनिर्भरता हमारे देशवासियों में आयेगी ही।" इस उद्देश्य पर पहुँचने के लिए स्वामीजी ने कहा – "विदेशों के लोग तुम्हारे देश में उत्पन्न कच्चे माल से ऐसे-ऐसे स्वर्णिम पदार्थों का निर्माण कर रहे हैं और तुम लादी से लदे गधे की तरह उसे ढो रहे हो।... (वे) महान हो गये हैं और तुम अपनी संकुचित बुद्धि के घेरे में, अपनी पैतृक सम्पदा को दूसरों के लिए फेंककर यत्र-तत्र भोजन के लिये दया-याचना कर रहे हो।" "इसलिए मैं इन देशवासियों को विभिन्न कार्यों में लग जाने की शिक्षा देता हूँ ताकि वे

अपने लिए वस्त्र और अन्न पैदा कर सकें। अन्न-वस्त्र की कमी और उसकी चिन्ता ने इस देश का सर्वनाश कर दिया है।''

कृषि-आधारित उद्यमिता की प्रगति में बाधाएँ हैं – सरकारी योजनाओं, बैंक से ऋण लेने और योजनाओं को रूप देने में जानकारी का अभाव, विक्रय सम्बन्धी ज्ञान का अभाव तथा आपस में मेल-जोल का अभाव। झाड़ू की एक सींक को आसानी से तोड़ सकते हैं, किन्तु झाड़ू को नहीं। स्वयं-सहायता-समूह के रूप में, किसान-क्लब के रूप में या गाँव के कृषि उत्पादक, उत्पादित वस्तु से उपयोगी वस्तु बनाने वाले उद्यम, लघु उद्योग, व्यावसायिक केन्द्र, कृषि-सेवा केन्द्र, सभी एक साथ मिलकर परस्पर एक-दूसरे को संघबद्ध होकर सहायता कर सकते हैं। अपने गाँव में कुआँ, तालाब, चेक डैम, शौचालय स्वयं बनायें, तो वह भी स्वरोजगार का पथ खोलता है। स्वयं उद्यमी बनकर दूसरों को उद्यमी बनाते हैं, तभी देश बेरोजगारी और दरिद्रता से मुक्त होगा और आप भी। मशीन से धान से चावल, मूड़ी (puffed rice), मकई (Popcorn), चनाचूर का उद्योग करें। अचार, मुरब्बा, चटनी जैम, जेली, आलू चिप्स आदि बहुत कुछ बना सकते हैं। हल्दी, मिर्च, अमचूर, धनिया का चूर्ण आदि मसाले का उद्योग खोल सकते हैं। अब समय आ गया है कि इन विचारों को हम पाठ्यक्रम के जरिये लोगों तक पहुँचायें और देश को समृद्धि के नए आयाम तक ले जायें।

आप अपने उद्यम से धनवान बनेंगे, तभी देश धनधान्य से सम्पन्न होगा। देश की उत्पादन शक्ति बढ़ेगी। विदेश का धन आयेगा। देशवासी सुखी होंगे। अर्थात् आप सुखी होंगे। शरीर का प्रत्येक अंग स्वस्थ तो देह भी स्वस्थ, शरीर सबल तो अंग भी सबल।

आइये। हम चुनौती स्वीकार कर, इसका सामना करें और देश को बेरोजगारी और गरीबी से मुक्त करें। ○○○

हरि-सा हीरा छांड़ि के काहू की ना चाह

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

पन्ना के राजा धौकल सिंह ने जब सुना कि यहाँ के जुगल किशोर भगवान के मन्दिर में बाबा हिम्मत दास नामक कोई सन्त पधारे हैं और लोग बड़ी संख्या में उनसे मिलने जाते हैं, तो एक दिन वे भी उनके दर्शन के लिये मन्दिर गए। उस समय बाबा भगवान के चिन्तन में मग्न थे। उन्होंने जब आँखें खोलीं, तो राजा ने उनके चरणों पर सिर नवाया। ''लोग यहाँ बड़ी संख्या में आते हैं। इससे आपको कष्ट होता होगा। मैं चाहता हूँ कि आप मेरे राजस्थान में स्थायी रूप से वास करें। आपको यहाँ किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।'' राजा के ऐसा कहने पर बाबा बोले,

राजपाट चाहूँ नहीं, नहीं चाहूँ धन-धाम।
हिम्मतपुरिया प्रेम के नाम कनी से काम।।

महाराज ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और चुपके से पहने हुए आभूषणों में से एक हीरा निकाल कर पूजा की थाल में डाल दिया। बाबा ने तुरन्त कहा –

हिम्मत हीरा कारने, तन में लोभ उपजाए।
ज्ञान दूबरे न खोदिए, मिलत मिलत मिल जाए।।
तत सर दौना आगम है, जलचर हैं बहु जोर।
हिम्मत हीरा हिये में, ढूंढो जुगल किशोर।।
जग में हीरा राम है, रहे सकल घट पूर।
हरिदरसन के दास को, हिम्मत दास हजूर।।

पद का सार-भाव था – ''हीरा तो भगवान जुगल किशोर हैं। उसे निकालने के लिये ज्ञान रूपी कुदाल की आवश्यकता है। दौना सरोवर में बहुत से मगरमच्छ हैं। उनसे स्वयं को बचाना होगा। तभी हमें ह्रदय की गहराई से राम और कृष्ण रूपी हीरा प्राप्त होगा। हीरा ये दोनों हैं, जो घट-घट में पूर्ण रूप में अवस्थित हैं। आपने जो कंकड़ यहाँ रखा है, उसे चुपचाप ले जाएँ।'' बाबा के ऐसा कहने पर राजा ने चुपचाप हीरा उठा लिया और प्रणाम कर चले गये।

कामनाएँ मनुष्य के दुख-बन्धनों की जड़ हैं। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेटकर चिन्तारहित हो जाता है, उसी प्रकार सन्त-महात्मा अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को सब ओर से संकुचित करके लोभ-लिप्सा रहित हो जाते हैं। धन-सम्पत्ति की उन्हें तनिक भी इच्छा नहीं रहती। इसी में उनका सुख निहित रहता है। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (३)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का, 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया सरल हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्याम: सर्वं ह वो वक्ष्याम इति।।२।।

अन्वयार्थ – **स** वे **ऋषि:** ऋषि **तान्** उन लोगों से **उवाच** बोले – **भूय: एव** पुन: **तपसा** तपस्या **ब्रह्मचर्येण** ब्रह्मचर्य (और) **श्रद्धया** श्रद्धा के साथ, **संवत्सरं** एक वर्ष तक **संवत्स्यथ** निवास करो; (उसके बाद अपनी) **यथाकामं** इच्छा के अनुसार **प्रश्नान्** प्रश्न **पृच्छत** पूछो, **यदि** यदि **विज्ञास्याम:** हमें ज्ञात होगा, (तो) वो (तुम्हारे द्वारा पूछा गया) **सर्वं ह** सब कुछ ही **वक्ष्याम:** बताएँगे इति॥२॥

भावार्थ – वे ऋषि (पिप्पलाद) उन लोगों से बोले – पुन: एक बार तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ एक वर्ष तक निवास करो । (उसके बाद अपनी) इच्छा के अनुसार प्रश्न पूछो, यदि हमें ज्ञात होगा, (तो हम तुम्हारे द्वारा पूछा गया) सब कुछ ही बताएँगे।

भाष्य – तान् एवम् उपगतान् ह स किल ऋषि: उवाच भूय: पुन: एव यद्यपि यूयं पूर्वं तपस्विन: एव तपसा इन्द्रिय-संयमेन तथा अपि इह विशेषत: ब्रह्मचर्येण श्रद्धया च आस्तिक्य-बुद्ध्या आदरवन्त: संवत्सरं कालं संवत्स्यथ सम्यक् गुरु-शुश्रुषा-परा: सन्तो वत्स्यथ।

भाष्यार्थ – इस प्रकार अपने समीप आये हुए उन लोगों से ऋषि (पिप्पलाद) ने कहा – यद्यपि तुम लोग पहले से ही तपस्या तथा इन्द्रिय-संयम के कारण तपस्वी हो, तथापि अब पुन: विशेष रूप से ब्रह्मचर्य तथा आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धापूर्वक एक वर्ष का समय उचित प्रकार से गुरु की सेवादि करते हुए (यहाँ) निवास करो।

ततो यथाकामं यो यस्य काम: तम् अनतिक्रम्य यथाकामं यद्-विषये यस्य जिज्ञासा तद्-विषयान् प्रश्नान् पृच्छत। यदि तद्-युष्मत्-पृष्टं विज्ञास्याम: - अनुद्धतत्व-प्रदर्शनार्थो यदि शब्दो न अज्ञान-संशयार्थ: प्रश्न-निर्णयात् अवसीयते - सर्वं ह वो व: पृष्टं वक्ष्याम इति।

तदुपरान्त जिसकी जो इच्छा हो, उसका अतिक्रम न करके, (तुममें से) जिसकी जिस विषय में जिज्ञासा हो, वह उन विषयों के प्रश्न पूछे। तुम्हारी पूछी हुई बातों को 'यदि' मैं जानता होऊँगा, तो मैं वह सब तुम्हें बताऊँगा; यहाँ पर 'यदि' शब्द अज्ञान-रूप संशय नहीं, अपितु विनय (सौजन्य) प्रकट करने हेतु है, जैसा कि आगे (उनके द्वारा) प्रश्नों की मीमांसा से स्पष्ट हो जाएगा॥२॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ। भगवन् कुतो ह वा इमा: प्रजा: प्रजायन्त इति।।३।।

अन्वयार्थ – **अथ** इसके (एक वर्ष) बाद **कबन्धी** कबन्धी **कात्यायन** कात्यायन ने **उपेत्य** (ऋषि के) पास जाकर **पप्रच्छ** पूछा – **भगवन्** हे भगवन्, **कुतो ह वै** किस कारण-विशेष से **इमा:** ये सभी **प्रजा:** प्राणी **प्रजायन्ते इति** उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ – इसके (एक वर्ष) बाद कबन्धी कात्यायन ने (ऋषि के) पास जाकर पूछा – हे भगवन्, किस कारण-विशेष से ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं?

भाष्य – अथ संवत्सरात् ऊर्ध्वं कबन्धी कात्याय: उपेत्य उपगम्य पप्रच्छ पृष्टवान् – हे भगवन् कुत: कस्मात् ह वा इमा: ब्राह्मण-आद्या: प्रजा: प्रजायन्त उत्पद्यन्तो। अपर-विद्या-कर्मणो: समुच्चितयो: यत्कार्यं या गति: तद् वक्तव्यम् इति तदर्थ: अयं प्रश्न:॥

भाष्यार्थ – इसके एक साल बाद कत्य के पौत्र कबन्धी ने (पिप्पलाद के) समीप जाकर, उनसे पूछा – हे भगवन्! ब्राह्मण से लेकर (अन्य) समस्त प्राणी, जो दिख रहे हैं, वे वस्तुत: किससे उत्पन्न होते हैं? अपरा (सगुण) उपासना तथा कर्मकाण्ड के समुच्चय का जो फल तथा गति (उत्तरायण-दक्षिणायन) होगी, उसे बताया जाय – इसी उद्देश्य से (मेरे द्वारा) यह प्रश्न किया गया॥३॥ **(क्रमश:)**

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय
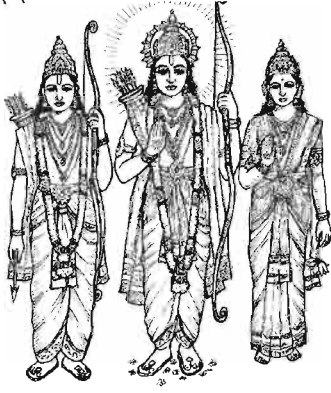
(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

पहले सम्बोधन में उन्होंने विभीषण को लंकेश कहकर पुकारा। पूरे प्रसंग में एक संकेत आता है कि जब मेघनाद की मृत्यु होती है, तो उसमें विभीषण हेतु बनते हैं। अगर रावण की मृत्यु होती है, तो उसमें विभीषण हेतु बनते हैं। इसको दोनों दृष्टियों से विचार करके आप देखिए। इसका अलग-अलग साधनों के स्तर पर अलग-अलग तात्पर्य है। अगर रोग के सन्दर्भ में मानस रोग की दृष्टि से विचार करके देखें, तो कोई डॉक्टर या कोई वैद्य चाहे कितना भी योग्य क्यों न हो, अगर रोगी सहयोग न करे, तो किसी में शक्ति नहीं है कि उसको अच्छा करके दिखा दे। क्यों? रोगी को अपनी समस्या का, अपनी प्रकृत्ति का जितना ज्ञान है, उतना ज्ञान वैद्य को थोड़े ही है। जब वैद्य के सामने वह अपने आपको प्रस्तुत कर देता है, तो वह वैद्य उसकी समस्या का समाधान देता है। यों भी कह लीजिए कि अगर कोई बड़ा नगर या देश का, सबसे बड़ा डॉक्टर या वैद्य बुलवा ले और वह कोई दवा लिखे या दे जाय और आप उस दवा को न खाएँ, तो वह आपके रोग को दूर कर सकता है क्या? वह तो कर ही नहीं सकता। मानो भगवान विभीषण को पग-पग पर यह अनुभव कराना चाहते थे कि मेघनाद अगर जीवित है, तो इसलिए कि मेघनाद को मारने का उपाय तुम जानते हो, रावण को मारने का उपाय तुम जानते हो। भगवान का तात्पर्य यह था कि ईश्वर के रूप में अगर मुझे रावण का और मेघनाद का वध करना होता, तो मैं अवतार क्यों लेता। वह तो मैं संकल्प कर लेता और उसका विनाश हो जाता। मैं तो केवल यह अनुभव कराना चाहता हूँ कि इतना शक्तिशाली जो रावण प्रतीत होता है, उसकी मृत्यु का उपाय तो तुम्हीं जानते हो और हुआ भी यही। विभीषणजी तो बड़े संकोच में पड़ गये, प्रभु, आप मुझसे पूछ रहे हैं? एक तो भगवान यह जानना चाहते हैं कि तुम चाहते भी हो कि नहीं कि रावण की मृत्यु हो? बड़ा विचित्र प्रश्न है! कोई भी कहेगा कि कौन नहीं चाहेगा। पर सच बात यह है कि मोह की मृत्यु हो जाय, ममता की मृत्यु हो जाय, इसको चाहनेवाले कितने व्यक्ति हैं? मोह और ममता की चाहे जितनी निन्दा करें, पर उनको यह चिन्ता तो बनी ही रहती है कि यह नहीं रहेगा, तो हमारे जीवन में यह जो संसार की सारी वस्तुओं का हमारे मन में आकर्षण है, व्यवहार का जो आनन्द है, वह तो समाप्त हो जायेगा।

वह गाथा तो आपने सुनी ही है कि रावण ने जब कुम्भकर्ण को जगाया, तो कुम्भकर्ण ने रावण से यही कहा कि जब आपने इतना छल किया, तो राम का वेष क्यों नहीं बना लिया? तो रावण ने यही कहा कि जब मैं राम का रूप बनाने के लिए राम का ध्यान करने बैठा, तो मेरा अन्त:करण इतना पवित्र होने लगा, इतनी साधुता की वृत्ति आने लगी कि मैं डर के मारे ध्यान छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मुझे लगा कि यदि थोड़ी देर और ध्यान करूँगा, तो घर-बार छूट जायेगा, जंगल में जाकर साधु ही हो जायेंगे, भीख माँगकर खाना पड़ेगा। कैसी विचित्र कल्पना है, आप सोचिए तो! संसार में साधारण व्यक्ति की स्थिति से उठकर व्यक्ति धनी होना चाहता है। इसका तात्पर्य क्या है? कितना अनोखा संकेत है! भिक्षा को संन्यास में सर्वोत्कृष्ट रूप में देखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि भिक्षावृत्ति दिखाई देती है, तो उसमें हीनता और दैन्य की वृत्ति नहीं है। उसको किसी बहिरंगवस्तु की संग्रह की अपेक्षा नहीं है। ऐसी स्थिति में जिस साधना के द्वारा सब कुछ छूट जाय, उसे भला कौन करना चाहेगा? वह तो वही करना चाहेगा, जिसके द्वारा सब कुछ मिले। अभी कलकत्ते में प्रवचन चल रहा था। वहाँ के मंत्री ने टेलीफोन करके मुझसे पूछा कि कैसेट निकालना है, तो आप बता दें कि किस प्रसंग पर,

क्या चाहते हैं। इस बार भरत चरित पर कथा हो। उन्होंने कहा कि मैं चाहता हूँ कि अयोध्याकाण्ड में वह जो अंतिम दोहा है, उसे कैसेट पर लिखा जाय –

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति।।

२/३२६/०

सुनकर मुझे थोड़ी हँसी भी आई। अब तक संकोच के मारे मैं कुछ नहीं बोला। अच्छा-अच्छा, भरत चरित्र ही होगा, अगर आप यह दोहा कहते हैं, तो ठीक है, इसी को दे दीजिए। पर संयोग था, श्रीमती सरला बिरला ने आग्रह किया कि इस दोहे के स्थान पर यह लिख दिया जाय कि –

जौं न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को। २/२३२/१

तो संयोग ऐसा था कि उसी पंक्ति को रखा गया। मैंने विनोद में बिन्नीजी से कहा, अच्छा हुआ, यह बदल गया। क्योंकि आप क्या चाहते हैं और क्या लिखा हुआ है इस दोहे में, उसको चाहने वाले कितने लोग हैं? इस दोहे का फल क्या है? बोले –

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।

भरत चरित्र को जो व्यक्ति आदर पूर्वक सुनेगा, उसको क्या मिलेगा? **सीय राम पद प्रेम –** भगवान श्रीराम और श्रीसीताजी के चरणों में प्रेम मिलेगा। अगला फल क्या है?

'अवसि होइ भव रस बिरति '।

संसार के रसों से वैराग्य हो जाएगा।

हमने कहा, क्या कलकत्तेवालों को यही 'भवरस बिरति' की कथा सुनवाइएगा? संसार में कहीं इसके ग्राहक नहीं मिलेंगे। कुछ और प्रसंग रख दीजिए। इन्हें पहले कुछ स्थिति में पहुँचने दीजिए। सच बात तो यह है कि बुराइयों का विनाश चाहनेवाले बहुत बिरले व्यक्ति होते हैं। वे तो कुछ ऐसी स्थिति चाहते हैं कि वह भी बना रहे और यह भी बना रहे। दोनों ओर का मिलता रहे। ऐसी स्थिति है। भगवान राम पग-पग पर यह बताना चाहते हैं – जीव, क्या तुम सचमुच चाहते हो कि रावण मारा जाय? क्या हमें जीवन में इसका अनुभव होता है? जब हमलोग बुराई की निन्दा करते हैं, तो वास्तव में बुराई की निन्दा नहीं करते, बुराई के परिणाम से डरते हैं। चोरी की निन्दा करते हैं, तो इसलिए नहीं कि चोरी को बुरा समझते हैं, चोरी से जेलखाना हो सकता है, इससे डरते हैं।

अगर यह उपाय मिल जाय कि चोरी भी करें और जेलखाना भी न जाना पड़े, तब तो इतने लोग चोरी करने लगेंगे कि उसकी कोई सीमा नहीं रह जायेगी। हम तो चाहते यही हैं कि हम किसी तरह से बुराई करते रहें और उसके साथ-साथ बुराई के परिणाम से बचते रहें। तो मानो भगवान अन्तिम क्षण में विभीषण से पूछते हैं, चाहते हो क्या तुम कि रावण की मृत्यु हो जाय? उपाय तो तुम जानते हो, उपाय तुम्हारे पास है। तब विभीषण ने ही तो उपाय बताया। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा, महाराज –

नाभिकुंड पियूष बस याकें।
नाथ जिअत रावनु बल ताकें।। ६/१०१/५

महाराज, रावण के नाभि में अमृतकुण्ड है और उसी के कारण रावण जीवित है। जब तक इस अमृतकुण्ड को आप नहीं सुखायेंगे, तब तक रावण का विनाश नहीं होगा। उसका तात्त्विक अभिप्राय वही है। बीस और दस तीस नहीं होगा। उसका तात्त्विक अभिप्राय वही है। ये जो बीस और दस तीस बाण हैं, ये तीस साधन है। इन तीस साधनों के द्वारा रावण की भुजा और सिर कट जाते हैं। लेकिन विभीषण यह जानते हैं कि प्रत्येक बुराई के पास एक अमृत कुण्ड होता है। बुराइयों में जीवित रहने की जितनी शक्ति है, उतनी शक्ति अच्छाइयों में नहीं है। इसीलिए माना जाता है कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य और देवगुरु बृहस्पति, दोनों में एक अन्तर है – बृहस्पति को संजीवनी विद्या का ज्ञान नहीं है और शुक्राचार्यजी को मृतसंजीवनी का ज्ञान है। बृहस्पति मरे को जीवित नहीं कर सकते, पर शुक्राचार्यजी मरे को जीवित कर देते हैं, किन्तु इसका उपयोग असुरों के लिये होता है। इसीलिए असुर शुक्राचार्य की बड़ी सेवा-पूजा करते हैं। शुक्राचार्यजी कितने महत्त्वपूर्ण ज्ञानवान रहे होंगे, जिनमें मृत को जीवित करने की क्षमता थी! पर व्यंग्य यही है न कि मृत को जीवित कर देने का उद्देश्य यदि यही हो कि दुर्गुणों को जीवित कर दिया जाय, तो वह कला किस काम की? जो कला, जो पाण्डित्य, दुर्गुणों को अमर बनाता है, वह तो हमारे लिये आदर्श नहीं हो सकता। पर यह दिखाई भी देता है कि सद्गुण जो हैं, वे अल्पायु होते हैं, कम समय तक जीवित रहते हैं और दुर्गण जो हैं, दीर्घजीवी होते हैं,

मरते भी है तो पुन: जीवित हो उठते हैं। सद्गुण शीघ्रता से मर जाते हैं, दुर्गुणों को लगता है कि उनका विनाश बड़ी कठिनाई से होता है। इस स्थिति से भगवान मानो यह संकेत देना चाहते हैं।

जीव के रूप में विभीषण ने मानो कहा, प्रभु साधना के तीस बाण से काम नहीं चलेगा। यह जो नाभि का अमृतकुण्ड है, इसे सुखा दीजिए। नाभि का अमृतकुण्ड क्या है? बोले – वह एक बाण, कृपा का बाण है। बोले – तीस साधनों के बाद भी जब तक आपकी कृपा का बाण नहीं चलेगा, तब तक दुर्गुणों के मूल का विनाश नहीं होगा। इस प्रकार से उसका विनाश होता है।

इसका अभिप्राय है कि एक ओर उस संदर्भ में देखें, तो न्यूनता ही न्यूनता है। अगर वेदान्त की दृष्टि से जीवन की महिमा पर विचार करें, तो कहते हैं – जीवोब्रह्मैवनापर:। ज्ञान स्वरूप की स्मृति करा देता है, जो मूल तत्त्व है, उसकी स्मृति करा देता है। सन्त भी स्मृति करा देते हैं। एक सज्जन ने मुझसे कहा, क्या बतावें, हमें तो याद ही कुछ नहीं रहता। तो मैंने विनोद में उनसे यही कहा कि भई, आप कोई कैसेटे हों और उनमें पहले से ही कुछ भरा हुआ हो, उसमें जगह ही खाली न हो, तो उसमें दूसरा भरेगा कैसे? अब आपने तो इतने शत्रु-मित्र, राग-द्वेष सबको अपने मन में भर रखा है, उसे खाली कीजिए, तब नई या पुरानी बात याद हो।

जब लंकिनी को हनुमानजी का मुक्का लगा, तो पुरानी बात याद आ गई। लंकिनी ने कहा, महाराज, आपके मुक्का लगने से मुझे एक पुरानी बात याद आ गई। क्या? बोली, जब मेरा निर्माण हुआ, तो ब्रह्मा से मैंने पूछा कि मेरा भविष्य क्या है? तो ब्रह्मा ने कहा कि सबसे पहले तो तुम्हारे ऊपर देवताओं का शासन रहेगा, बाद में यक्षों का शासन हो जायेगा और उसके बाद राक्षसों का। बड़ी सांकेतिक भाषा है। लंकिनी प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति पर तीन का शासन होता है – देवता, यक्ष और राक्षस का। जब सत्त्वगुण के द्वारा प्रवृत्ति संचालित हो, तो वह देवताओं का राज्य है, रजोगुण के द्वारा जब प्रवृत्ति संचालित हो, तो वह यक्षों का राज्य है और जब तमोगुण के द्वारा प्रवृत्ति संचालित हो, तो वह राक्षसों का राज्य होता है। ऐसा होता भी है कि हमारे आपके जीवन में प्रवृत्ति के मूल में कभी सत्त्वगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण का आधिपत्य तो रहता ही है। इसका अनुभव तो आप लोगों में से कथा में बैठे हुए कुछ लोग कर रहे होंगे। इतना कहने पर भी आप सो रहे होंगे, तो समझ लीजिए कि आपकी वृत्तियों पर राक्षसों का शासन चल रहा है। तो ब्रह्मा ने उस समय जब यह बात कही, तो लंकिनी उदास हो गई। उसने कहा – अच्छा, आपने मेरा निर्माण किया, क्या यही मेरी नियति है? एक-के-बाद एक पतन, अन्त में पतन ही मेरी चरम परिणति है? ब्रह्मा ने कहा कि घबराओ मत। एक दिन ऐसा आयेगा, जब एक बन्दर आयेगा और बन्दर का मुक्का जब लगेगा, तो समझ लेना कि अब राक्षसों का विनाश होने वाला है। वही होता भी है। गोस्वामीजी लिखते हैं –

पुनि संभारि उठी सो लंका।
जोरि पानि कर बिनय ससंका।
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा।
चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
बिकल होसि तैं कपि के मारे।
तब जानेसु निसिचर संघारे।। ५/३/५-७

हनुमानजी के विषय में आप सुन चुके हैं। हनुमानजी मूर्तिमान वैराग्य हैं। प्रवृत्ति पर तमोगुण के राज्य का विनाश कब होगा? जब वैराग्य का मुक्का लगेगा। वैराग्य के द्वारा जिस समय वह प्रवृत्ति शिथिल होकर गिर पड़े, मुँह से रक्त निकलने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि अब राक्षसत्व का, तमोगुण का विनाश होनेवाला है। हनुमानजी ने उसे जब मुक्का मारा, तो उसका परिणाम ठीक निकला। उसे वही नई बात, उसे तो प्रारम्भ से यही पढ़ाया गया था कि तुम लंका के राजा रावण की सेविका हो, प्रहरी हो, तुम्हारा कर्तव्य है कि लंका में किसी को चोरी से न घुसने दो। इसीलिए हनुमानजी जब लंका में पैठने लगे, तो उसने यही कहकर रोक दिया कि –

मोर अहार जहाँ लगि चोरा। ५/३/३

मैं अपने धर्म का पालन कर रही हूँ। चोरों को खाना मेरा धर्म है। तुम चोर हो, इसलिए मैं तुम्हें खाऊँगी। हनुमानजी समझ गये। इसकी बुद्धि तो उलटी है। अगर यह चोरों को खानेवाली होती, तो सबसे पहले रावण को खाती। वह सीताजी को चुराकर ले आया है, और मैं सीताजी का पता लगाने आया हूँ, उसे चोर समझ रही है और जो चोरी किए हुए है, उसे स्वामी कह रही है। यह जीव का विपरीत भ्रम

शेष भाग पृष्ठ ३६८ पर

श्रीकृष्ण-महिमा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

कृष्ण की महिमा का वर्णन कोई करे तो कैसे करे,
शब्द भी जब थक गये, सब ज्ञान भी रह गये धरे।।
मन पहुँच पाता नहीं, वाणी रही निष्फल सदा,
पर भक्ति का संगीत ही, उसको लुभाता सर्वदा।
ज्ञान देते रहे थे उद्धव, कृष्ण के विस्तार का,
पर कृष्ण बंदी बन चुके थे, गोपी-हृदय-संसार का।
कृष्ण-महिमा का है अनुभव भाव के संसार में,
कृष्ण होते हैं प्रकट भक्तों के नित मनुहार में।
सूर ने देखा था उनको, भाव के संसार में,
नित्य लीला घट रही थी, उनके हृदय दरबार में।
हे कृष्ण! कर दो तुम कृपा, मेरे हृदय में भाव दो,
भक्ति का वरदान दो, चरणों में तुम स्थान दो।।

करो हरि भजन सानन्द

बाबूलाल परमार

मिलने-जुलने में आनन्द, घुलने-मिलने में आनन्द।
परस्पर प्रेम में आनन्द, सच्चे प्रेम में आनन्द।।
करो नमस्ते जग में सबसे, यह पहला आनन्द।
जय श्रीराम-जयश्रीकृष्ण, ओम-आनन्दम्-आनन्द।।
भला-बुरा न कहना सुनना, मन पर यह पक्का पाबन्द।
भगवान भजन में लगे लगन, तो मिलता परमानन्द।।
आँखें बन्द, कान बन्द और लब पर लगे पाबन्द।
ध्यान-मनन-चिन्तन में प्रभु के मिलता ब्रह्मानन्द।।
प्रेम-पूर्वक मिलो-जुलो और मुस्काओ मन्द मन्द।
न कुछ लेना न कुछ देना, मस्त-मगन-आनन्द।।
सबका भला करो जग में और हरिभजन सानन्द।
प्रेम प्रभु का नाम है प्यारा, ओम आनन्दम् आनन्द।।

आरती भारत माता की

कमलसिंह सोलंकी

ॐ जय भारत माता मैया जय भारत माता।
जन्मभूमि, जननी को स्वर्ग कहा जाता।।
उत्तर में हिमशिखर हिमालय सजग खड़ा पहरे,
बंग, अरब और हिन्द महासागर अथाह गहरे।
मेघ दामिनी के संग आकर वर्षा कर जाता।। ॐ..
विन्ध्य, सतपुड़ा में खनिजों के भंडार भरे,
गंगा, यमुना, रेवा, कावेरी सिंचित खेत करें।
वायु चँवर डुलाता, हर प्राणी जीवन पाता।। ॐ..
शस्य श्यामला धरा उर्वरा अन्न अवतार धरे,
दया क्षमा की देवी हर मानव का उदर भरे।
निशा-दिवस में चन्दा-सूरज जगमग कर जाता।।ॐ..
राम, कृष्ण अवतरित हुए सृष्टि कर्ता-धर्ता,
ब्रह्मा-विष्णु-शम्भु सृष्टि-पालन-संहर्ता।
श्रीमद्भगवद्गीता, वेद,भागवत को पूजा जाता।।ॐ..
माँ तेरा इतिहास है गौरवशाली पुराना,
भूमि यहाँ उगलती हीरा, मोती सोना।
मिलने से आशीष देश सुख-सम्पत्ति पाता।। ॐ..
आज जगत में कहलाती हो, तुम भारत माता,
भटका मानव आत्मशान्ति को तेरी शरण आता।
किसी देश का अतिथि सम्मान यहाँ पाता।। ॐ..
भारत माता की आरती जो सुबह-शाम गावे,
कहत कमल माँ सेवक चरम शान्ति पावे।
विष्णु प्रिया के चरण में वह सदा शरण पाता।। ॐ..

जय जय गणपति

आनन्द तिवारी पौराणिक, महासमुंद

शंकर-सुत हे गौरी नन्दन।
जय जय गणपति जय जगवन्दन।
प्रथम पूज्य है शोकविनाशक, लम्बोदर हे सिद्धि विनायक।।
अष्टसिद्धि नवनिधि-प्रदाता, कष्टनिवारक आनन्ददाता।।
कपित्थ, जम्बूफल तुम्हें समर्पण।। जय जय ...
सुमिरन, भक्ति अनन्य होय जब,
विद्या-बुद्धि-बल मिलहिं सुयश तब,
नाथ ! कृपादृष्टि बरसाओ, प्रकटो हृदय आनन्द हर्षाओ।
पावन उज्ज्वल हो तन-मन।। जय जय ...

देशभक्त मैडम भीकाजी कामा

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

श्रीमती भीकाजी रुस्तम कामा मूल रूप से भारतीय नागरिक थीं। इनका जन्म २४ सितम्बर, १८६१ को मुम्बई के पारसी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सोहराबजी फ्रामजी पटेल था। वे एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। उनके पिता उन्हें प्रेम से 'मुन्नी' कहकर बुलाते थे।

मुन्नी को बचपन से ही पढ़ने-लिखने का शौक था। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी। वे तब तक भोजन नहीं करती थीं, जब तक कि स्कूल का गृहकार्य और अध्ययन पूरा न कर लें। वे अपनी कक्षा में सर्वदा सभी विषयों में सबसे ज्यादा अंक अर्जित कर प्रथम स्थान प्राप्त करती थीं। वे सभी अध्यापकों की प्रिय शिष्या थीं। उन्होंने अलेक्जेंडर पारसी गर्ल्स स्कूल से पढ़ाई की थी। मुन्नी ने छोटी-सी आयु में ही अँग्रेजी भाषा में भी दक्षता हासिल की थी। बचपन से ही वे उन देश-भक्तों की पूजा करती थीं, जिन्होंने देश की आन और शान के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था।

छोटी-सी आयु में ही भारतीय आजादी की लड़ाई की ओर उनका झुकाव था। उनके पिता नहीं चाहते थे कि उनकी पुत्री स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़े, इसलिए मुम्बई के प्रसिद्ध वकील रुस्तम के.आर. कामा से उनका विवाह कर दिया। मैडम कामा के पति ब्रिटिशों को भगवान् मानते थे। उनके पति उन्हें यह धमकी देते रहते कि वे स्वतन्त्रता संग्राम में भाग न लें। परन्तु मैडम कामा उनसे असहमत थीं और उन्होंने भारत माता को स्वतन्त्र कराने में अपने जीवन को अर्पित कर दिया।

मैडम कामा राष्ट्र सेवा को महत्त्व देती थीं। १८९६ में जब मुम्बई में प्लेग की महामारी से लोग मृत्यु का शिकार हो रहे थे, उस समय मैडम कामा ने प्लेग से ग्रस्त लोगों की सेवा की, परन्तु इस दौरान वे स्वयं भी इस रोग की चपेट में आ गईं। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने के लिए वे १९०२ में यूरोप गईं। १९०५ में लन्दन पहुँचीं और एक ऑपरेशन के बाद वे स्वस्थ हो गईं। वहाँ मैडम कामा, वीर सावरकर, दादा भाई नौरोजी जैसे स्वतन्त्रता सेनानियों के सम्पर्क में आईं।

मैडम कामा सामाजिक कार्यों के साथ-साथ भारतीय संस्कृति एवं विचारों को महत्त्व देती थीं। २२ अगस्त, १९०७ को जर्मनी के शहर स्टुटगार्ड में हुए अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में मैडम भीकाजी कामा ने भारत की ओर से प्रतिनिधित्व किया। जैसे ही मैडम कामा मंच पर पहुँचीं, उन्होंने अपने बैग से एक झण्डा निकाल कर कहा, कुछ बोलने से पहले मैं हमेशा अपने देश का झण्डा फहराती हूँ। फिर उन्होंने सभी से कहा, 'मैं आप सबसे निवेदन करती हूँ कि आप सभी इस ध्वज के सम्मान में खड़े हो जाएँ और इसका अभिवादन करें। सभी लोगों ने मैडम कामा के अद्भुत व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए खड़े होकर झण्डे का अभिवादन किया।' इस प्रकार यह प्रथम भारतीय तिरंगा था जो किसी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर फहराया गया।

मैडम कामा पेरिस गईं और वहाँ 'वन्दे मातरम्' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। जब फ्रांस की सरकार को इस बात का पता लगा कि मैडम कामा प्रथम विश्व युद्ध में सहायता के लिए गए भारतीय सैनिकों को उनके खिलाफ भड़का रही हैं, तो उन्होंने उन्हें एक किले में बन्द कर दिया और प्रथम विश्व युद्ध के बाद छोड़ा। इस दौरान वे शारीरिक रूप से बहुत ही दुर्बल हो गईं और भारत लौट आईं। १३ अगस्त, १९३६ को उनकी मृत्यु हुई। अन्तिम समय में भी उनके मुख से वन्दे मातरम् निकला।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए मैडम कामा ने ३५ वर्षों तक निर्वासित जीवन बिताया। मैडम कामा अद्भुत साहस, त्याग, राष्ट्र के प्रति निष्ठा, चरमोत्कर्ष सेवा कार्य के भाव से ओत-प्रोत नारी थीं, जिन्होंने अपने देश की आजादी के लिए अपने निरापद तथा सुखी जीवन की तिलांजली दे दी। इस प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम की एक धधकती हुई ज्योति शान्त हो गई। माँ भारती की ऐसी मातृ-शक्ति को हम नमन करते हैं। ○○○

क्रान्तिकारी भगवान श्रीकृष्ण

डॉ. रमेशचन्द्र यादव 'कृष्ण', मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

श्रीकृष्ण के लोक-पावन सत्कर्मों और देव-दुर्लभ गुणों के कारण श्रद्धाभारावनत जन-मानस ने उनको अनेक श्रद्धा-प्रेम भरे नाम दिये। इन्द्रिय-निग्रह के कारण वे हृषीकेश (हृषीक = इन्द्रियाँ, ईश = स्वामी) कहलाए। मधु नामक असुर संहार के कारण वे मधुसूदन तथा मध्वरि के रूप में विख्यात हुए। वृष्णिकुलभूषण होने के कारण वार्ष्णेय कहलाए। जन-मन-प्रिय होने के कारण 'जनार्दन' कहलाए। गोपाल-गोसंवर्द्धन के कारण 'गोपाल' और 'गोविन्द' कहलाये। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य के पुंज, भग से युक्त होने के कारण 'भगवान' कहलाये।

नीलगगन सदृश वर्ण होने के कारण कान्हा 'नीलघनश्याम' तथा कृष्ण कहलाए। धर्म-संस्थापक और असुर-विनाशन के कारण 'धर्मावतार' माने गये। सबके साथ सरलता और समानता का व्यवहार करने के कारण कृष्ण 'सोमवत्प्रियदर्शन:' 'चन्द्र' तथा 'सौम्यवपु' के रूप में प्रसिद्ध हुए। सद्गुण और शुभाचरण से आबालवृद्ध, नर-नारी, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, यमुना, कुंज सबको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण 'मनमोहन' कहलाए। कामदेव के समान रूपवान होने के कारण तथा मदरहित होने के कारण वे 'मदन' (मदन = कामदेव, मदन = काम+न = मदरहित) कहलाए।

त्रेतायुग के श्रीराम भारत की उत्तर-दक्षिण एकता के देव हैं, द्वापर के श्रीकृष्ण राष्ट्र की पूर्व-पश्चिम एकता के देव हैं। मणिपुर से द्वारका तक श्रीकृष्ण और उनके सहचरों का पराक्रम हुआ है। जैसेकि जनकपुर से श्रीलंका तक चक्रवर्ती श्रीराम और उनके अनुयाइयों का। धर्मसंस्थापक की दृष्टि से बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव अश्वों से संयुक्त श्रीकृष्ण भगवान का किंकिणीक नामक रथ समग्र राष्ट्र की परिक्रमा करता रहता था, उस पर आसीन लोकनायक श्रीकृष्ण चक्रसुदर्शन धारण किए राष्ट्र के सजग प्रहरी की भाँति 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' का व्रत लिए घूमते रहते थे। क्रान्तदर्शी श्रीकृष्ण के क्रान्तिकारी कार्य शिशु-अवस्था से ही प्रारम्भ हो गये थे। उन्होंने अल्पायु में ही चुनौतियों का सामना करना प्रारम्भ कर दिया। अत्याचारी शासक कंस द्वारा प्रेषित आतताइयों को यम-सदन की यात्रा करने पर विवश कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि संसार के महापुरुष बड़ी अवस्था में पहुँचकर ही क्रान्ति करने में सफल हो पाये हैं। पूतना, बकासुर आदि का संहार श्रीकृष्ण ने अल्पायु में ही कर दिया था। गोकुल के दूध-दही तथा नवनीत (माखन, मक्खन,) का कंस की सेवा में भेजा जाना रोक दिया। व्रजललनाओं का तीर्थों में निर्वसन स्नान उन्होंने निषिद्ध कर दिया।

किसी भी देश के पतन और पराधीनता का फल न केवल तत्कालीन जनता को भोगना पड़ता है, अपितु आनेवाली पीढ़ियों को भी यह कुफल चखना पड़ता है। सबसे बुरी बात तो यह होती है कि उसके प्राचीन पूर्वजों और पुरातन साहित्य को भी बुरे रंग में रंग दिया जाता है। विलासिता और पतन के इस अभिशाप ने श्रीकृष्ण-चरित्र को भी कालिमा के कर्दम में भी साने बिना नहीं छोड़ा। यही कारण है कि शताब्दियों से श्रीकृष्ण का शृंगारी रूप-चित्रण तो किया जाता रहा, किन्तु १८ वर्ष की आयु में कुख्यात कंस को मार गिरानेवाले, चाणूर का चूर्ण बना देनेवाले, निरंकुश राजतन्त्र के समर्थक लोकपीड़क जरासन्ध, भौम, पौण्ड्र, शिशुपाल, शकुनि, दुर्योधन, दु:शासन का नाश करनेवाले, दुर्योधन की राजसभा में शान्तिदूत बनकर जानेवाले, गणतन्त्रनाशक कंस को मारकर गणतन्त्रीय व्यवस्था का उद्धार करनेवाले, कालिय नाग को दण्डित करनेवाले, जरासन्ध के कारागार से ८६ राजाओं को मुक्त करानेवाले, भौमासुर के चंगुल से सहस्रों कन्याओं को स्वतन्त्र करनेवाले, द्रौपदी की लाज बचानेवाले, योग की शक्तियों से परिपूर्ण, सुरा, कामासक्ति, द्यूत के विरोधी, इन्द्रियनिग्रही, मैत्री और समता का व्यवहार करनेवाले, नित्यप्रति नियमपूर्वक सन्ध्या और अग्निहोत्र करनेवाले **(रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह — उद्योगपर्व ८४/२१)**

कृतोदकानुजप्यः स हुताग्नि समलंकृतः – उद्योगपर्व ८३/६), वेद-वेदांग के ज्ञाता, बलवीर्यसम्पन्न, दान, दक्षता, कीर्ति, बुद्धि के स्वामी, ऋत्विक्, गुरु, स्नातकरूप वाले श्रीकृष्ण पर बहुत कम लिखा गया है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है –

वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्री कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमाः।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।।

(सभापर्व ३८/१९-२०)

सबसे अधिक दुख की बात तो यह है कि श्रीकृष्ण का मानव जाति को जो सबसे बड़ा योगदान भगवद्गीता है, उस पर भी बहुत कम चर्चा की गई है।

श्रीकृष्ण ने मानव-समाज को सब प्रकार से संयमित, अनुशासित और सत्पथ पर चलने के लिये प्रेरित किया और इसके लिए संघर्ष किया।

श्रीकृष्ण ने मानवजाति को अनियन्त्रित कामाचार, द्यूत, शिकार और सुरापान से बचने का परामर्श दिया है –

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थितम्।
दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः।।

(महा. वनपर्व १३/७)

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के सम्मुख वन में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण ने बलपूर्वक दुर्योधन को जुआ खेलने से क्यों नहीं रोका। उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा पता होता, तो मैं बिना बुलाए ही सभा में आ जाता, उन्हें जुआ खेलने से रोकता, यदि वे न मानते तो उन्हें मार डालता –

अनामयं स्यात् धर्मश्च कुरूणां कुरुवर्धन।
न चेत् स मम राजेन्द्र गृहणीयान्मधुरं वचः।
पथ्यं च भरतश्रेष्ठ निगृहणीयां बलेन तम्।
अथैनमपनीतेन सुहृदो मम दुर्हृदः।
सभासदोऽनुवर्तेरंस्तांश्च हन्यां दुरोदरान्।।

(महा. वनपर्व. १३/११-१३)

आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः।
आम्बिकेयेन दुर्धर्ष राज्ञा दुर्योधनेन च।।

(महा. वनपर्व. १३/२)

ऐसे क्रान्तिकारी महापुरुष महाभारत में अन्य नहीं हैं। श्रीकृष्ण ने अपने मामा कंस को भी इसलिये मार दिया था, क्योंकि उसने वेद-शास्त्रसम्मत राजशास्त्र मर्यादा को तिलांजलि देकर मनमाना दुराचरण प्रारम्भ कर दिया था।

वैदिक पद्धति में राजा का लोकरक्षक स्वरूप ही मान्य है। राजा का निर्वाचन करते समय निर्वाचन मंडल के सदस्य राजा से कहते थे – तुझे यह राष्ट्र कृषि, क्षेम, सम्पत्ति के समान विभाजन तथा प्रजापोषणार्थ दिया जाता है –

इयं ते राष्ट्र यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसिधरुणः।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्व पोषाय त्वा।।

(शतपथ ब्राह्मण, ५/२/१/२५)

राजा को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी – जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ है और जिस रात्रि में मैं मरूँ, मैं अपने समस्त शुभ कर्मों, अपने स्वर्ग, जीवन और वंश से वंचित हो जाऊँ, यदि मैं प्रजा का उत्पीड़न करूँ –

याञ्च रात्रीमजायेऽहं याञ्च प्रेतास्मि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्त मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि ते द्रुह्यमिति।

(ऐतरेय ब्रा.८/१५)

किन्तु अत्याचारी कंस इन सब आदर्शों को भूल गया, वैदिक राजशास्त्रीय मान्यताओं का उल्लंघन कर गया और प्रजा पर घोर अत्याचार करने लगा। इसलिये लोकरक्षक श्रीकृष्ण को उसका वध करने के लिए उद्यत होना पड़ा। श्रीकृष्ण ने तो भीष्म और द्रोण को भी परामर्श दिया था कि वे लोग दुर्योधन का त्याग कर दें या उसे अपदस्थ कर दें, तो महाभारत का संकट टल सकता है। उनका परामर्श नहीं मानने का परिणाम था महाभारत का युद्ध। श्रीकृष्ण ने प्रत्येक अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति कर समाज को न्याय दिलाया। कोई भी अन्यायी, अत्याचारी उनसे बचा नहीं।

प्रत्येक लोकपीड़क और वैदिक मर्यादा-भंजक चाहे वह मामा कंस, नाना जरासन्ध, भ्राता दुर्योधनादि, पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य, किसी का भी मुखौटा धारण करके क्यों न आया हो, उसे 'विनाशाय दुष्कृताम्' के व्रतधर चक्रपाणि श्रीकृष्ण के चक्र (सुदर्शन चक्र तथा राजनीतिक चक्र) का लक्ष्य बनना ही पड़ा।

भगवान व्यास ने श्रीकृष्ण को धर्म का मूल है – **मूलं कृष्णो.. - (आदि पर्व १/१११)**। श्रीकृष्ण अपनी उपस्थिति में धर्म की क्षति नहीं देख सकते थे। उनकी उपस्थिति में जुआ नहीं खेला जा सकता, नारी को अपमानित नहीं किया जा सकता। सज्जन धर्मप्रिय व्यक्ति नहीं सताया जा सकता।

श्रीकृष्ण ने भयग्रस्त, निराश ब्रज-मण्डल और मथुरा सहित सम्पूर्ण शूरसेन जनपद को अपने वीरोचित कृत्यों द्वारा अभय का वातावरण प्रदान किया। ब्रज का ग्राम्य वातावरण कृष्ण कन्हैया की मुरली की धुन और नृत्य पर थिरक उठा। योगिराज कृष्ण ने कृषि प्रधान भारत राष्ट्र की धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की मूल भित्ति गोमाता की अनन्य सेवा की। ग्वाल-बालों के साथ मिल-जुलकर भोजन, क्रीड़ा तथा विचार-विमर्श की परम्परा का सूत्रपात करके इस वैदिक शिक्षा को साकार किया –

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानामुपासते।।

(ऋग्वेद १०/१९/२)

अर्थ – श्रीकृष्ण ने सदा यह ध्यान रखा कि हमारे संगी बालक किसी भी परिस्थिति में हीन-भावना से ग्रस्त न हों। इसलिये उन्होंने सहस्रों गौओं के अधिपति राजा नन्द के पाल्यपुत्र होते हुए भी स्वर्ण-किरीट एवं आभूषणों को महत्त्व नहीं दिया और न ही वीणा आदि बहुमूल्य वाद्ययन्त्रों के प्रति आकर्षण व्यक्त किया। उन्होंने आभूषणों-अलंकरणों का कार्य प्रकृति प्रदत्त और ग्राम-सुलभ मयूर पंखों, कमल और वैजयन्ती पुष्पों आदि से लिया और वाद्ययन्त्र का कार्य हरे बाँस की सुन्दर सुरीली बाँसुरी से लिया।

यमुना की कछारों में साथियों के साथ मल्ल-विद्या तथा शस्त्रास्त्र-विद्या का अभ्यास करना, इन्द्र (भोगवादी मनोवृत्ति) के विरुद्ध विद्रोह करना, लोक कल्याणकारी विचारों का प्रचार-प्रसार करना, इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को भारत की राजधानी का पद प्रदान करना, गीता का उपदेश देना आदि महान कार्यों में श्रीकृष्ण के उस उच्च स्वरूप के दर्शन किए जा सकते हैं, जिसमें हिमालय जैसी ऊँचाई है और ब्राह्म तथा क्षात्र धर्मों का अभूतपूर्व अद्वितीय योग है।

हमारी संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि भगवान श्रीकृष्ण ने रक्तपात और आसुरीवृत्ति का सदा विरोध किया और साम्राज्य में न्याय, निर्भयता और शान्ति और समृद्धि की स्थापना की। ○○○

मातृभूमिसूक्तम्

छन्दः - पंक्तिः

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

परितः पाति पुष्णाति उत, सं युनक्ति स्वसन्ततीः स्नेहात्।
सेयं नो मातृभूमिः प्रजाभिः, भोः सं रक्ष्यतामसुभिरपि।।१।।

अर्थ – सब ओर से अपनी सन्तान को परस्पर जोड़कर स्नेहवश रखती हुई, रक्षा तथा पोषण करनेवाली यह हमारी मातृभूमि है। अरे, प्राण देकर भी इसकी रक्षा करनी चाहिए।

वासं वाससं सं प्रयच्छन्ती, सस्यानि बहूनि जायमाना।
प्राचुर्येण प्रसूय भोज्यानि, पृथिवी जननीव नस्कृते।।२।।

अर्थ – निवास, वस्त्र देती हुई, ढेरों फसल उत्पन्न करती हुई, प्रचुर मात्रा में खाद्य सामग्री उत्पन्न कर यह पृथ्वी हमारी माता के समान है।

सहस्रवक्त्रैर्वमन्ति धातून्, स्रोतांसि नाना अपावृणोति।
हिरण्यहिरण्यरेतसामपां गौर्गोस्तनं तर्णकायेव।।३।।

अर्थ – मातृभूमि अपने हजारों मुखों से हीरा आदि धातुओं को प्रकट करती है, सोने, अग्नि, जल के विविध स्रोतों को उद्घाटित करती है, जैसे गाय बछड़े के लिये अपने स्तन सौंप देती है।

जनान् बहुविधानाचरन्तो धर्मिणो विधर्मिणः पापिष्ठान्।
समत्वेन सं परि पश्यति नाद्रुहत् केभ्यश्चित् सर्वंसहा।।४।।

अर्थ – धार्मिक-अधार्मिक और अतिशय पापियों जैसे बहुत प्रकार के आचरण करनेवाले लोगों को मातृभूमि समान रूप से ही देखती है। सब कुछ सहन करनेवाली यह माँ किसी से द्रोह नहीं करती।

समुद्वहन्तीं मातरं भूमिं विश्वानि भद्राणि समाश्रये।
सर्गाध्वरे देवीमीडामहे, सर्वभूतानां सुकुटुम्बिनीम्।।५।।

अर्थ – हम समस्त प्रकार के कल्याणों को वहन करनेवाली मातृभूमि की शरण ग्रहण करते हैं। सृष्टियज्ञ में सभी भूतों की कुटुम्बस्वरूपा देवी की हम स्तुति करते हैं।

○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (८)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

ठीक इसी प्रकार प्रकृति का संयोग जीवों के साथ कराना, यह ईश्वर का काम है। पिछले अध्यायों में हमने पढ़ा है जहाँ पर भगवान कह रहे हैं कि मेरी ये दो प्रकार की प्रकृतियाँ हैं। एक अपरा प्रकृति और अन्य एक को परा प्रकृति कहते हैं। अपरा प्रकृति अष्टधा है। इसमें ये पाँच तत्त्व (पञ्च महाभूत), मन, बुद्धि और अहंकार – ये तीन, ऐसी आठ तत्त्वोंवाली अपरा प्रकृति है। यह जड़ है, अचेतन है। इसको क्षर भी कहते हैं। यह बात भगवान कह चुके हैं। परा प्रकृति कौन-सी है? जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् – यह चैतन्यात्मक है। यह चैतन्य प्रकृति ही भगवान की परा प्रकृति है। इन दोनों के संयोग से यह सारा संसार उत्पन्न होता है। इस चैतन्य के भीतर यह सारे संस्कार पड़े हुए हैं, उसका संयोग इस अष्टधा प्रकृति (जड़ात्मक) से करा देते हैं। इस चैतन्य प्रकृति के विषय में पाश्चात्य मनोविज्ञान में भी अधिक कुछ खोज नहीं की जा सकी है। विज्ञान भी यहाँ पर आकर कुछ मूक-सा हो जाता है। न्यूरोलॉजिस्ट अध्ययन करके बता देगा कि मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली क्या है? यह जो भेजा है, वह किस प्रकार काम करता है? परन्तु ये चैतन्यात्मक और अचैतन्यात्मक मस्तिष्क हैं, इसके सम्बन्ध में अभी तक निश्चित रूप से भौतिक विज्ञान में कुछ कहा नहीं जा सका है।

यह चैतन्य क्या है? यह जो मन चेतनात्मक होता है, अवचेतन में चला जाता है। इसकी प्रकृति कैसी होती है? यह चैतन्य तत्त्व क्या है, इसके सम्बन्ध में विज्ञान खुलासा नहीं कर पाया है। एक बहुत अच्छे वैज्ञानिक हो गये हैं पियरे शार्दिन (Cherdin)। इन वैज्ञानिक में कई प्रकार के गुण मिले-जुले थे। एक तो व्यवसाय से वे शल्य-चिकित्सक (सर्जन), Paleantologist थे। उसके बाद पादरी भी थे। ये भिन्न-भिन्न आयाम उनके जीवन में मिले हुए थे। इस चेतनात्मक सत्ता को लेकर उन्होंने अध्ययन किया, बहुत गवेषणाएँ कीं, अनेक तर्क दिये। इसका उन्होंने वहाँ बड़ा सुन्दर वैज्ञानिक विश्लेषण दिया है। उन्होंने अपनी पुस्तक – 'The Phenomenon Of Man' में Consciousness को लेकर बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उसमें वे कहते हैं – Consiousness can only be experienced in singular, reasonable in plural – यह जो चैतन्य है, उसका अनुभव केवल एकवचन में हो सकता है, उसका अनुभव द्विवचन में नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता? तर्क बड़े ही सुन्दर हैं। उसमें तकनीकी बारीकियाँ हैं, इसलिए उसे यहाँ पर मैं नहीं रख रहा हूँ।

जिसे चेतन-सत्ता कहते हैं, उसका अनुभव हमें केवल एकवचन में ही हो सकता है। इसका अर्थ क्या है? इसका केवल एक ही अर्थ निकलता है कि चेतन सत्ता केवल एक ही है। जो एक है, वह अनन्त ही हो सकता है। जो संसार में एकमात्र है, वह तो अनन्त होगा ही। उस अनन्त का द्वैत्व का अनुभव नहीं हो सकता। यदि आप कहेंगे कि अनन्त में द्वित्व है, तब तो अनन्त की सीमा हो गयी। उसकी सीमा आ गई। अगर वह अनन्त सत्ता है, तो एक अनन्त दूसरे अनन्त द्वारा बाधित हो जाएगा। यह तो बहुत ही गलत कल्पना हो गई। अनन्त कहने से ही उसका अर्थ हुआ कि वह असीमित है। वहाँ पर कहीं भी सीमा नहीं है। इसका

सीधा अर्थ यह है कि जब चैतन्य सत्ता एक ही है, जिसका दो में अनुभव नहीं किया जा सकता, तो इसका मतलब स्पष्ट है कि चैतन्य अनन्त है, असीम है और वह केवल एक है।

यहाँ पर भगवान कह रहे हैं – **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ...**, चर और अचर दोनों को जोड़ देते हैं। इसी को चिज्जड़ ग्रन्थि भी कहा जाता है। रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने चिज्जड़ ग्रन्थि की बात कही है। वे कहते हैं कि चित् और जड़ की गाँठ पड़ गयी है। यह गाँठ सुलझती ही नहीं है, वह उलझती ही जाती है। मनुष्य जितना उसे सुलझाने का प्रयास करता है, वह गाँठ खुलती तो नहीं, बल्कि और भी उलझती जाती है। इसे कहा गया है चिज्जड़ ग्रन्थि। प्रभु कहते हैं कि यह सब मेरी अध्यक्षता में हो रहा है। गोस्वामीजी इस विषय में चौथे घाट की बात कहते हैं। तीन घाट तो सभी जानते हैं – एक ज्ञान का घाट है, एक भक्ति का घाट है, एक कर्म का घाट है। इन तीनों घाटों के रहते हुए गोस्वामीजी एक चौथे घाट का निर्माण करते हैं। वे कहते हैं –

सुखी सुन्दर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेई एई पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।।

ये चार घाट हैं। इसमें श्रीराम रूपी जल भरा हुआ है। मानो श्रीराम का निर्मल चरित्र इस सरोवर का जल है। इस सरोवर के चार घाट हैं। चार घाट की उन्होंने सुन्दर कल्पना की है – ज्ञान का घाट, कर्म का घाट, भक्ति का घाट और चौथा घाट दीनता का घाट है। जैसे उन्होंने रूपक करके बताया। कर्म के घाट में याज्ञवल्क्य और भारद्वाज बैठे हैं। उसी प्रकार, भक्ति के घाट पर काकभुशुण्डि बैठे हैं और श्रोता के रूप में गरुड़जी हैं। ज्ञान के घाट पर वक्ता के रूप में शंकरजी हैं, श्रोता के रूप में पार्वतीजी हैं। इन तीनों घाटों के जो श्रोता हैं, उनके मन में श्रीराम के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में संशय है। उस संशय का निवारण प्रत्येक घाट का वक्ता अपनी-अपनी शैली से करता है। कर्म के घाट पर भारद्वाज के मन में राम के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में जो संशय है, उस संशय को याज्ञवल्क्य ऋषि कर्म की प्रक्रिया से दूर करते हैं। भक्ति के घाट पर गरुड़जी के मन में श्रीराम के ईश्वरतत्व के सम्बन्ध में जो संशय है, उसे काकभुशुण्डिजी भक्ति की प्रक्रिया का साक्ष्य लेकर दूर करते हैं। ज्ञान के घाट पर पार्वतीजी को संशय है श्रीराम के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में, जिसे ज्ञान का सहारा लेकर भगवान शंकर उनकी शंका को दूर करते हैं। ऐसी सुन्दर घाट-रचना वहाँ पर गोस्वामीजी ने की है। उसके साथ वे कहते हैं कि एक चौथा भी घाट है। यह दीनता का घाट है। किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि जब ये तीन राजमार्ग हैं। कर्म का रास्ता है, ज्ञान का रास्ता है, भक्ति का रास्ता है। चाहे आप कर्म मार्ग से चले जाइए, ज्ञानयोग का सहारा ले लीजिए या भक्ति का पथ ले लीजिए। किन्तु आपने इन तीनों रास्तों को छोड़ दिया और अपने लिए एक अलग रास्ता स्वीकार कर लिया? गोस्वामीजी ने कहा कि भाई, मुझे कोई नया रास्ता खोजने की जिद तो नहीं थी। मैं तो इन तीनों राजमार्गों से ही जाना चाहता था। मैं कर्म के घाट पर गया, वहाँ पर जाकर मैंने देखा कि कर्म की कितनी चर्चा हो रही है। पूर्वमीमांसक हैं, ये कर्मकाण्डी हैं, और मीमांसा पर कितना विचार किया जा रहा है। कहा कि मैं भी प्रभावित हो गया। प्रश्नकर्ता ने गोस्वामीजी से कहा, तुम तो जानते ही हो, अब मेरे हाथ में यह काठ की माला रख दी और मैं भगवान का नाम लेता हूँ, माला फेरते रहता हूँ। माला फिर रही थी और मैं भी दत्तचित्त होकर कर्मघाट पर वार्तालाप या शास्त्रार्थ सुन रहा था। इतने में एक की दृष्टि मेरी ओर पड़ी। उसने मुझसे पूछा, क्योंजी क्या खड़े-खड़े देख रहे हो? क्या चाहते हो? मैंने कहा – यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं भी इस घाट का सदस्य बनना चाहता हूँ। मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। उस व्यक्ति ने एड़ी से लेकर चोटी तक मुझको देखा और एकदम दुतकारते हुए कहा कि भागो यहाँ से। काठ की माला जपनेवाला कर्म का रहस्य समझेगा? अरे, कोई है, इसको यहाँ से निकालो। मुझे तो निकाल दिया। प्रश्नकर्ता ने पूछा – उसके बाद आपने क्या किया? गोस्वामीजी बोले – उसके बाद क्या करता? फिर मैं ज्ञान के घाट पर गया। वहाँ पर घट-पट का वर्णन चल रहा था। अवच्छिन्न-अवच्छेद आदि। बहुत सुन्दर तर्क थे। भाई, मैं तो वहीं खड़ा था। अब भगवान का नाम लेते-लेते कभी आँखों में आँसू आ जाते हैं। पर मैं दत्तचित्त होकर उनके तर्कों को सुन भी रहा था। ज्ञानघाट के एक व्यक्ति ने पूछा, क्यों जी, यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो? मैंने विनयपूर्वक कहा कि मैं इस घाट का सदस्य होना चाहता हूँ। उसने मेरी ओर देखकर कहा – तुमने अपना चेहरा दर्पण में देखा है? रोनेवाला ज्ञानघाट का सदस्य बनेगा! चल निकल यहाँ से। वहाँ से भी मुझे भगा दिया गया। प्रश्नकर्ता ने कहा – जब आप रो रहे थे, तो आपके लिए भक्ति का घाट

ही उत्तम था। क्या वहाँ से भी आपको भगा दिया गया? उन्होंने उत्तर दिया – नहीं, वहाँ से भगाया तो नहीं। मैं भक्ति के घाट पर गया। मैंने वहाँ जाकर जो देखा, तो उससे दंग रह गया। कितने प्रकार के भक्त! क्या चीत्कार कर रहे हैं! कितनी आकुलता से रो रहे हैं! पछाड़ खा-खाकर भगवान को पुकार रहे हैं! मैंने अपने से कहा – तुलसी! तेरी भक्ति तो इनकी भक्ति के पसंगे में भी नहीं है। मैंने ही अपने को अयोग्य समझा। भक्ति के घाट के योग्य भी मैं नहीं था। इसीलिए चौथा घाट किया। कौन-सा घाट? दीन का घाट –

कर्मी कठमलिआ कहे, ज्ञानी ज्ञान विहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाइगो, राम दुआरे दीन।।

ज्ञानी ने कह दिया कि यह ज्ञानविहीन है। कर्मी ने कह दिया कि यह कठमलिया है, काठ की माला जपता है। उसके बाद तुलसी ने तीनों रास्ते त्याग दिये और उन्होंने दीनता का सहारा लिया, जिसका वर्णन गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में किया है। प्रश्नकर्ता ने पूछा – दीनता का क्या अर्थ है? तुलसी ने कहा – भाई, दीनता का और क्या अर्थ है? जैसे एक वाहन पर बैठकर तुम चले जा रहे हो, अचानक तुम्हारे कानों में आवाज सुनाई पड़ी – बाबूजी, मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ पैसा नहीं चाहिए, तीन दिन से भूखा हूँ, खाने की कुछ चीज हो तो दे दो। तो तुम क्या करोगे? अपना वाहन रोकोगे और कहोगे कि ले भाई, ये कुछ चीजें ले ले। फिर गोस्वामीजी ने कहा कि यदि वह कहे कि मेरी तो आँखें नहीं हैं, तब तुम क्या कहोगे? आँखें नहीं हैं, तो मेरी बात तो सुन ही सकता है। मेरी बात सुनकर मेरे पास चला आ। यदि उसने अपना अधोवस्त्र हिलाकर बताया कि उसकी टाँगे भी नहीं हैं, वह चल नहीं सकता। वह कहेगा कि बाबूजी मेरे पास तो पैर ही नहीं है। कोई सहारा देनेवाला नहीं है। तब तुम क्या करोगे? तब तो मैं स्वयं ही उतर जाऊँगा और हाथ बढ़ाकर उससे लेने के लिए कहूँगा। ऊपर का कपड़ा दिखाकर उसने कहा कि उसके तो हाथ भी नहीं हैं और वह बहुत भूखा है। फिर क्या करोगे? अरे, गोस्वामीजी, तब तो मैं उसको खिला ही दूँगा। बस, यही दीनता का घाट है। मैंने भी भगवान को पुकारा, तो भगवान आए। कहा – तुलसी, पुकारता है, ले मैं आया हूँ। मैंने कहा, आप आ तो गए, किन्तु मेरे तो ज्ञाननेत्र हैं ही नहीं। आपने ज्ञान के नेत्र दिये ही नहीं कि मैं आपको देख सकूँ। अरे, देख नहीं सकता है, ठीक है, मेरी बात सुनकर मेरे पास आ तो सकता है। महाराज, कर्म के पैर दिये होते, तब न चलता। चलने की शक्ति तो है नहीं। कर्म करने की ताकत तो मेरी है ही नहीं। मैं आप तक चलकर कैसे जाऊँ? तो प्रभु ही मेरे पास आ गये। उन्होंने कहा – लो, हाथ बढ़ाओ। मैंने कहा – महाराज, उपासना के हाथ तो आपने दिये ही नहीं! मैं किन हाथों को बढ़ाकर आपकी दी हुई चीज लूँ? तब प्रभु ने अपनी गोद में मुझे उठा लिया। स्वयं ही अपने हाथों से मुझे खिलाया। मुझे तृप्त किया। यह दीनता का घाट है।

यहाँ जो कहा गया है कि ईश्वर आते हैं और कहते हैं – तुलसी, तुमने मुझे क्यों बुलाया? तुलसी ने कहा कि प्रभु आपको कोई क्यों बुलाता है। आपने जीव को मानो त्रिगुण की डोरी से बाँधकर रखा है। इसीलिए जीव चाहता है कि उस बन्धन से मुक्ति मिले। जैसा मनु के प्रसंग में आता है कि मनु महाराज अत्यन्त धीर हैं – **परम धीर नहीं चलहि चलाए।** वे चलायमान नहीं होते। ब्रह्मा, विष्णु, महेश कई बार आकर कहते हैं कि मनु तुम्हारी तपस्या से हम प्रसन्न हैं। तुम आँखें खोलो, जो चाहते हो, हमसे माँग लो। धैर्यवान मनु महाराज आँखें नहीं खोलते। तब आकाशवाणी सुनाई देती है –

मागु मागु बरु भै नभ बानी। १/१४४/६

तुम वरदान माँग लो। तब मनु महाराज को लगता है कि मैंने जिस उद्देश्य से तपस्या की, वह उद्देश्य सफल होने का समय आ गया। मनु महाराज कहते हैं – आप कहते हैं कि वरदान माँगो। तो हम आपको देखना चाहते हैं। उन्होंने कहा -

अगुन अखंड, अनंत अनादी।
जेहि चिंतहि परमारथबादी।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा।। १/१४३/४,५

मनु महाराज ने कह दिया, हम आपको देखना चाहते हैं। जो नभ-वाणी, आकाशवाणी हुई, उसमें से आवाज आई – तुम मुझे देखना चाहते हो, पर क्या तुम जानते हो कि मैं देखने योग्य हूँ? क्या मैं दर्शन दे सकता हूँ या रूप में आ सकता हूँ? क्या तुम इस बात को जानते हो? मनु महाराज ने कहा – मैं जानता हूँ, महाराज! आप निर्गुण हैं, अनन्त हैं, अखण्ड हैं और नेति नेति कहकर शास्त्रों ने आपका वर्णन किया है। परन्तु हमने यह भी सुना है –

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।

भगत हेतु लीलातनु गहई।। १/१४३/७

ऐसे जो प्रभु हैं, वे सेवक के बस में होते हैं और भक्तों के लिए वे लीला-शरीर धारण करते हैं।

जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा।

तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।। १/१४३/८

यदि श्रुति की, वेद की यह वाणी सत्य है, तो आप हमें दर्शन दीजिए। तब तो प्रभु बहुत समस्या में पड़ गये। जब वेद की बात कह दी गई, शास्त्र की बात कह दी गई, तो वे टाल तो नहीं सकते थे। उन्होंने कहा – ठीक है मनु, तुम देखना चाहते हो और शास्त्रों का प्रमाण देते हो कि मैं आऊँ, तो मेरा कोई बना-बनाया रूप नहीं है। भक्त मुझे साँचा देता है और कहता है कि महाराज, इस साँचे में ढलकर आ जाइए। तो तुम भी साँचा दे दो। उस साँचे में मैं अपने आपको ढालकर आ जाऊँगा। मनु महाराज ने साँचा दिया। बड़ा विलक्षण साँचा दिया। बहुत चतुराई का साँचा दिया। क्या साँचा दिया?

जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।। १/१४५/३-५

बड़ी चतुराई से कहते हैं कि जो स्वरूप भगवान शिव के मन में है। भगवान शिव जिस स्वरूप का ध्यान करते हैं, जिसके लिए मुनि लोग यत्न करते हैं, जो रूप काकभुशुण्डि के मन-मानस में बसा हुआ है, आपका जो रूप काकभुशुण्डि के मन-मानस का हंस है, वेद जिसकी सगुण और निर्गुण कहकर प्रशंसा करते हैं, हम उस रूप को नेत्र भरकर देखना चाहते हैं। यह बहुत विलक्षण बात है! जो सगुण भी है और निर्गुण भी है, ऐसे रूप को हम देखना चाहते हैं। श्रीरामकृष्ण एक उदाहरण देते हैं – एक कोई गाँव का व्यक्ति था। वह शहर में गया। शहर देखकर उसे बहुत अच्छा लगा। कहीं पर मेला लगा हुआ है, प्रदर्शनी लगी हुई है और वह घूम रहा है। एक जगह जाकर ठिठक गया। उसे बड़ी विचित्र बात लगी। वह रंगरेज की दुकान थी। एक ने आकर कहा कि मेरा कपड़ा पीले रंग में रंग दो। दुकानवाले ने चुटकी भर एक रंग लिया और उसे पानी में डालकर फिर कपड़ा डालकर छपछपा दिया और कपड़ा पीले रंग में रंग गया। एक आया, उसने लाल रंग में रंगाना चाहा। तीसरे ने हरा रंग चाहा और दुकानदार ने वही कर दिया। यह गाँववाला आश्चर्यचकित हो देख रहा है, खड़ा-खड़ा। भीड़ छँटी, तो रंगरेज ने देखा कि कोई गाँववाला लगता है, जो बहुत देर से देख रहा है। पूछा, क्यों जी, बहुत देर से खड़े हो, क्या देख रहे हो? कुछ रंगाना है? उसने कहा पहले तो रंगाना नहीं था, पर अब रंगाना चाहता हूँ। क्या रंगाना चाहते हो? कोई कपड़ा है? कपड़ा तो नहीं है। उसने अपनी सफेद कमीज उतारी और कहा इसी को जरा रंग दो। किस रंग में रंगना है? तुम्हारी डिबिया में जो रंग है, उससे रंग देना। यह बताया श्रीरामकृष्ण ने। क्योंकि डिबिया से रंग निकाला तो पीला हो गया, फिर निकाला तो लाल हो गया और उसके बाद हरा हो गया। इसीलिए उसने कहा कि तुम्हारी डिबिया में जो रंग है, उससे ही रंग दो। तो ठीक यही बात यहाँ मनु महाराज कहते हैं। जैसा हम कहते हैं कि यदि भक्त डाल-डाल, तो प्रभु भी पात-पात। जब प्रभु ने दर्शन दिया, तो उसका वर्णन क्या आता है? उसका वर्णन है –

नीलसरोरुह, नील मनि नील नीरधर स्याम। १/१४६

ये सब गूढ़ वर्णन जिसका अन्यत्र हमने वर्णन किया भी है। यहाँ पर यही बताने का प्रयत्न किया जा रहा है कि निर्गुण ईश्वर कैसे गुणवान बनता दिखाई देता है। नीलसरोरुह – नीले रंग का कमल, नीलमणि – नीले रंग का मणि, नील नीरधर – नीले रंग का मेघ। तो भगवान जो प्रकट हुए, उनके वर्ण की तीन प्रकार की उपमाएँ दी गई हैं। यह अत्यन्त दार्शनिक है। इन उपमाओं के माध्यम से वह संकेत किया गया है, जो हमें यहाँ ११वें श्लोक में भी दिखाई देता है। **(क्रमशः)**

गीता में श्रीकृष्ण जो कह गये हैं, उसके समान महान् उपदेश जगत में और कहीं नहीं है। जिन्होंने उस अद्भुत काव्य की रचना की थी, वे उन सब विरले महात्माओं में से एक थे, जिनके जीवन द्वारा समग्र जगत में नव जीवन की एक लहर दौड़ जाती है। जिन्होंने गीता लिखी है, उनके सदृश आश्चर्यजनक मस्तिष्क मनुष्य जाति और कभी नहीं देख पायेगी। **– स्वामी विवेकानन्द**

सुखी जीवन के सूत्र

इंजीनियर श्रीराम अग्रवाल

विश्व की सबसे बड़ी सेवाभावी आध्यात्मिक संस्था रामकृष्ण मिशन कहती है – मनुष्य देव-पुरुष है, उसमें दिव्यता विद्यमान है। वह नररूपी नारायण है। यदि मनुष्य को अपनी दिव्यता तथा अपने में छिपी महाशक्ति पर विश्वास हो, तो वह अद्‌भुत चमत्कारी कार्य कर सकता है। वह बचपन से ही अपने नकारात्मक भावों तथा दुर्बलताओं को दूर कर सकता है। हमारे भीतर अनन्त ऊर्जा का भंडार है, जो व्यक्त होने की प्रतीक्षा कर रहा है, इसके बोध से आत्मविश्वास बढ़ता है। ऊर्जा, महिमा, पवित्रता, एकाग्रता तथा साहस जीवन में उन्नति के लिए आवश्यक सभी गुण आत्मविश्वास से आ जाते हैं। हमारा लक्ष्य है सुखी, सफल व तेजस्वी महापुरुष बनना। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये परिश्रम के साथ ईश्वर पर भी विश्वास चाहिए। ईश्वर की प्रार्थना से सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। जीवन में चमत्कार हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आत्मविश्वास, ईश्वर पर विश्वास, स्पष्ट लक्ष्य, इच्छा शक्ति, प्रार्थना, नैतिकता, शील, संयम, सदाचार, सहनशीलता, देशभक्ति, मातृ-पितृ-सेवा, परोपकार, परिश्रम, एकाग्रता, स्वस्थ शरीर, श्रद्धा, मनोबल, आत्मा की शक्ति, अलोभ, सत्य, अहिंसा आदि गुणों से मानव सुख, शान्ति, सफलता और देवत्व का अधिकारी हो सकता है। हममें अनन्त शक्ति है। स्वयं को निर्बल समझना सबसे बड़ा पाप है। एक लैटिन कहावत है – अविराम अभ्यास सभी बाधाओं को दूर भगा देता है। योगवाशिष्ठ धर्मग्रंथ के अनुसार संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उचित तथा उत्साहपूर्ण प्रयास से प्राप्त न हो सके। श्रीमद्‌भागवतानुसार आध्यात्मिकता के विज्ञान से असीम प्रकृति का ज्ञान हो जाएगा। मनुष्य का गुरु उसकी स्वयं की आत्मा ही है। मनुष्य स्वयं अपना गुरु है। वह अपने मनोविज्ञान को समझने से महामानव बन सकता है।

अध्यात्म या दर्शनशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान एवं कलाओं की कला ही नहीं, अपितु ज्ञानों का ज्ञान है। अध्यात्म को समझने से व्यक्तित्व का विकास होता है। मानव महात्मा बन जाता है तथा वह सफलता, सुख व शान्ति का अधिकारी बन जाता है। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ईसा मसीह, मुहम्मद पैगम्बर आदि महामानव हैं। माँ सीता, सती, सावित्री, माँ सारदा, कुन्ती, मदालसा आदि महान नारियाँ हैं। ये ही हमारे आदर्श हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – शुद्ध बनना और दूसरों की भलाई करना ही सब उपासनाओं का सार है। जो गरीबों, निर्बलों और पीड़ितो में शिव को देखता है, वही वास्तव में शिव का उपासक है। स्वार्थ और खुशी एक साथ नहीं रह सकते। जो केवल मूर्ति में ही शिव को देखता है, तो यह उसकी उपासना का आरम्भ मात्र है। स्वामी विवेकानन्द जी ने आजीवन दीन-दुखियों की सेवा की।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अनन्त धैर्य, अनन्त पवित्रता तथा अनन्त अध्यवसाय होना, सफलता प्राप्ति का रहस्य है। साहसी होकर कार्य करो। प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्ति से पहले सैकड़ों बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जो उद्यमी हैं, वे आज या कल सफल होंगे। धैर्यहीन व्यक्ति कभी सिद्ध नहीं हो सकता। अत: धैर्यशाली बनो। सुख-शान्ति और सफलता में सबसे बड़ी बाधा ईर्ष्या है। अत: ईर्ष्या का जीवन से समूल नाश कर दें। स्वच्छता, संतोष, साधना, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान, ये पाँच सद्‌गुण मनुष्य को पूर्णता के पथ में ले जाते हैं। व्यक्ति को शारीरिक स्वच्छता और मानसिक शुचिता दोनों पर ही ध्यान देना चाहिए। हम सबको सबल स्वस्थ शरीर और मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होनेवाला अध्ययन हमारे लिये अत्यावश्यक है। मानसिक शुद्धि के साथ-साथ मनुष्य को श्रद्धा तथा भक्ति के साथ परमेश्वर की शरण में जाना चाहिए।

संसार की सभी प्रकार की सम्पदाओं में मनुष्य सर्वाधिक मूल्यवान है। देश में राष्ट्रीय भावना जागने का उपाय यह है कि अपनी लुप्त हो रही आध्यात्मिक शक्ति को पुन: जीवित किया जाय। इसी में सुखी जीवन जीने की कला भी है। नीति विज्ञान, अध्यात्म ज्ञान, व्यक्तित्व विकास की प्रबल क्रान्तिकारी विद्या है। श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं, ईश्वर में अटल विश्वास चमत्कार कर सकता है। ऐसा भक्त सर्वसमर्थ होता है। सक्षम व्यक्ति धैर्यशाली, क्षमाशील और सुखी होता है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (९४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१०-०८-१९६३

महाराज – हमें सरकार के चरण-तल में पड़े रहने की आवश्यकता नहीं है। हम यदि सच्चे, निष्ठावान हों, तो सरकार को आवश्यक और सहायक दिशा दे सकते हैं। हमारे कई साधुलोग कितना मानते हैं!

साधुओं के यम-स्वरूप पेंशन पानेवाले सिलहट में एक सेवानिवृत्त मजिस्ट्रेट टाँग अड़ाना चाहते थे, किन्तु मैंने उसे ऐसा नहीं करने दिया। उसके आने से कितना सुयोग होता धन, सम्मान सब मिलता! किन्तु साधुत्व को बचाए रखने का सौभाग्य नहीं होता, भाव को बचाए रखना सम्भव नहीं होता। कुछ सकारात्मक मिलना चाहिए। यथोचित यम-नियम का अभ्यास नहीं करने से कुछ नहीं होगा।

१८-०८-१९६३

महाराज – जब भी अवतार आते हैं, तभी एक हलचल होती है। संयम की लहर आती है। बुद्धदेव के समय सबलोग साधु होने लगे। श्रीचैतन्य के बाद देश वैरागियों से छा गया था। असंस्कारित परिवार से आकर लोग साधु होने लगे। उन लोगों का चाल-चलन विशृंखलित हो गया, जिससे संन्यासी की गरिमा कम हो गयी।

ईशानानन्द महाराज (वरदा महाराज) ने माँ की सेवा की है। वे महाराज के पेराम्बुलेटर के साथ चलते हुए बातें कर रहे हैं। जयरामबाटी में धनी घरों के लोग माँ की पूजा के लिये महँगी साड़ियाँ, गहने देते थे, वरदा महाराज उन साड़ियों, गहनों को प्रसाद के रूप में भक्तों को दे देते थे – यही सब बातें कर रहे हैं। प्रेमेश महाराज ने ये सब सुनकर कहा, "ऐसा क्यों? उन्हें समझा देना चाहिए। माँ गरीबों के लिए आई हैं, उन्हें दो सौ रुपए की साड़ी न देकर उस पैसे से उन गरीबों की सेवा करने से माँ अधिक खुश होंगी। माँ को दस रुपया देने से ही माँ के चौदह पीढ़ियों के लोग खुश हो जाएँगे। एक व्यक्ति ने भंडारे के लिए दो सौ रुपये खर्च किया है, ऐसा सुनकर मैं चौक गया! इन सब रुपयों से कंगालों को भोजन कराने से कितना उपकार होता! शिव-पूजा में लोग कितना खर्च करते हैं। विश्वनाथजी के दोनों ओर जीवन्त शिव बैठे हुए हैं! उन्हें कोई नहीं देखता। मैंने कहा है मेरे भंडारे में एक पैसा भी खर्च नहीं किया जाए। यदि कुछ रुपया रहे, तो उससे गरीब बच्चों को पुस्तकें खरीदकर दे दिया जाए।

अपराह्न के समय पेराम्बुलेटर पर भ्रमण करते हुए डाक्टर राय के साथ कुछ बातें हो रही थीं। कोई-कोई मच्छर को रक्त पिलाते हैं, यही बातें डॉक्टर राय कह रहे थे।

महाराज – यह सब कैसी बातें हैं! ठाकुर ने खटमल मारा है और तिलचट्टा मारने को कहा है। माँ ने मुझे एक बार एक कीड़ा मारकर फेंकने को कहा था।

डॉक्टर राय – जिसकी जैसी रुचि, जो जैसा समझे।

महाराज – नहीं, '**शास्त्रपूतं वदेत् वाक्यम्**।' हम लोगों की बात कौन सुनता है? शास्त्रसम्मत कहने से ही ग्रहण योग्य है!

x x x x x

रात में भोजन करते समय एक महाराज ने एक अन्य महाराज के व्यवहार के सम्बन्ध में एक घटना बताई।

महाराज – देखो, किसने क्यों, क्या किया, इन सबको बिना जाने-समझे, कुछ कहना उचित नहीं है। किसने, किसको, क्या किया, यह सब देख-सुनकर विचार करना चाहिए। फिर चाल-चलन (व्यवहार) में सभी से थोड़ी-बहुत त्रुटि हो ही सकती है। जो लोग धन देंगे, क्या उनका ही सत्कार करना चाहिए, ये क्या बात है! किसने धन दिया, इसको याद कर आँखों के सामने सूची रखोगे क्या? साधु नारायण-भाव से सबके साथ हमेशा अच्छा व्यवहार करेंगे।

१९-०८-१९६३

महाराज – कई लोग गीत-भजन का प्रचार नहीं करते,

अपना ही प्रचार करते हैं। इन सब भजनों में 'विश्वसभा में उसकी आवश्यकता है', ऐसी ही बात है! हमलोग स्वामीजी की कृपा से उसी समय समझ गए थे कि ठाकुर के आगमन के साथ ही विश्व में साम्य-मैत्री आएगी। महाराज लोगों ने मेरा भजन सुनकर आशीर्वाद दिया है, माँ ने आशीर्वाद दिया है, मैं इसी से परितृप्त हूँ। उन लोगों के आशीर्वाद से ही मेरे भीतर से ये सब भजन निःसृत हुए हैं। 'नीलकमल' गान सुनकर अभेदानन्द स्वामी इतने खुश हुए थे कि सिलहट के लोगों के माध्यम से उन्होंने मुझे यह संदेश भेजा था, "मैं सुनकर बहुत खुश हुआ हूँ।"

कोई कहीं से सीखकर तो यहाँ आता नहीं है, यहीं सीखने आता है। ऐसी कौन-सी विद्या है, जो गुरु के पास से नहीं सीखी जाती है, चोरी करना, सिगरेट पीना भी सीखना पड़ता है। किन्तु यहाँ किसी से कोई सीखनेवाला नहीं है। हमलोगों में सभी सर्वोत्तम हैं। देखोगे, जो भी साधु बनते हैं, कैसे-कैसे सब उपकरण हैं, कैसी गुणवत्ता है। सर्वोत्तम लोगों को चुनकर उन्हें उन-उन उपयुक्त कार्यों का भार देने से ही तो स्टैण्डर्ड हो जाता है। किन्तु कौन चयन करेगा!

बातों ही बातों में किसी साधु का प्रसंग उठा। वे बहुत सहज-सरल साधु हैं। उनके साथ घटी घटनाओं से साधु लोग बहुत आनन्दित होते और उनकी बहुत हँसी भी उड़ाते थे। उनके बारे में चर्चा हो रही है, सुनकर महाराज ने कहा, "देखो, उसे एक दिन किसी ने कहा था – तुम साधु हो, तुमने पिता और चौदह पीढ़ी के पूर्वजों का श्राद्ध किया है, तुमने अपना भी पिण्डदान किया है। तुम देह नहीं हो, प्राण नहीं हो, मन नहीं हो, बुद्धि नहीं हो। तुम अज, अमर, अच्छेद्य, अक्लेद्य, अशोष्य हो। तुम पूर्ण हो, तुम्हारा घर के, परिवार के 'मैं' के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे तो लगता है कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसे यह बात समझाई न जा सके कि यदि तुम्हारा मेहतर के घर में जन्म होने पर भी ब्राह्मण के घर में पालन-पोषण होता, तो क्या तुम स्वयं को ब्राह्मण नहीं समझते? बार-बार जन्म लिए हो और बार-बार कपड़े की तरह देह छोड़ते आए हो। मुझे तो लगता है कि यह बात सबको ही जानना चाहिए – मूर्ख को भी जान लेना चाहिए। इसे जान लेने पर भले ही और कुछ न हो, किन्तु मन में बल आता है। 'पंचकोष विलक्षणम्' – प्रत्येक साधु का ही प्रथम और अन्तिम कर्तव्य है।"

२०-०८-१९६३

महाराज – एक व्यक्ति कार्य छोड़कर रहना नहीं चाहता, यह गौरव की बात है! मुझे भवन-निर्माण देखने जाने को कहते हैं। वे जानते नहीं कि भवन-निर्माण में मेरी कितनी रुचि है! जितने दिन सिलहट में था, मकान बनाने ही नहीं दिया। मैं कहता था – बाबा! किसी भी प्रकार से थोड़ी सिर छिपाने की जगह बना लो। अभी ऐसे ही चलने दो, अच्छा भवन बनानेवाले लोग आएँगे।

"हनुमान कहते हैं, कुम्भकर्ण है मेरा पोता।
कार्य के समय दिखता नहीं,
करे तर्क का धक्कमधक्का।।"

गरीब बच्चों को शिक्षा देनी होगी, जनता से सम्पर्क करना होगा, नई भर्ती करनी होगी, पुस्तक देखकर-पढ़कर समझ सकोगे, ऐसी पुस्तक चाहिए, कार्यकर्ताओं को और भी अधिक परिश्रम करना होगा। आध्यात्मिक जीवन में सहायक नहीं होने पर वह सब कार्य साधु क्यों करेंगे? केवल कार्य कहने से साधु कैसे रस पायेंगे? कार्य के पीछे का भाव बता देना होगा। सब के भीतर भगवान हैं। पंचकोष विलक्षण है। हमेशा उठते-बैठते शिक्षा दो, देखोगे सब विसंगति समाप्त हो जाएगी। भर्ती करते समय चरित्र चाहिए, भगवत्प्रेमिक लोग चाहिए। मुझमें खूब उत्साह था। बहरमपुर जैसे स्थान से १०-१२ लोग साधु हुए हैं। मैंने बहुत मतवाला बना दिया था। जियागंज, बेलडांगा, कान्दी आदि अंचलों में केन्द्र प्रारम्भ हुए थे, अनेक युवक आवागमन कर सम्पर्क में आने लगे, उसके बाद मैं अस्वस्थ हो गया। ठाकुर की इच्छा नहीं थी। उल्लासपुर नामक ग्राम के उन्नयन में लगा था। मैं लोगों से ठाकुर की बातें किसी अन्य भावना से नहीं कहता हूँ, उनमें वास्तव में भगवान हैं, निष्ठापूर्वक ऐसा जानकर उनका कैसे उत्थान हो, उसी का प्रयास करता हूँ।

२१-०८-१९६३

महाराज – कल से 'प्राच्य-पाश्चात्य' पुस्तक लेकर आओ। पढ़ते-पढ़ते समय अच्छी तरह बीत जाएगा। तुम्हें कम कष्ट होगा।

चारों ओर लोगों को देखकर मनुष्य के बारे में कुछ भी अविश्वास नहीं होता। अन्त में वृद्धावस्था में बहुत कुछ देखकर कहता हूँ – मनुष्यों में जो भगवद्भक्त हैं, वे ही अच्छे हैं। उनमें भी, जिन्होंने श्रीरामकृष्ण को स्वीकार किया है, वे ही सर्वोत्तम हैं। **(क्रमशः)**

आत्मविश्वास ही है वास्तविक विश्वास अथवा आस्तिकता

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि नास्तिक वह नहीं है, जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, अपितु नास्तिक वह है, जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता।

आस्था अथवा विश्वास का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आस्था के बिना हम एक कदम भी धरती पर नहीं रख सकते।

हमें पूरा विश्वास होता है कि हम खड़े रह सकेंगे और चल सकेंगे, तभी एक के बाद दूसरा कदम धरती पर पड़ता है। हम विश्वास के सहारे ही तेज दौड़ पाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों को करने में सफलता प्राप्त करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि यह विश्वास क्या है और किसके प्रति विश्वास है, जो हमें असम्भव-से-असम्भव कार्य करने में सफलता प्रदान करता है तथा विषम-से-विषम परिस्थितियों में भी हम हार नहीं मानते। प्राय: लोग कहते हैं कि ईश्वर के प्रति विश्वास ही हमें अपार क्षमताओं से परिपूर्ण कर देता है, जिससे कठिन-से-कठिन काम करना भी चुटकी बजाते सम्भव हो पाता है। इसी विश्वास के कारण हम पूजा-पाठ अथवा प्रार्थना करते हैं और सफलता की कामना भी करते हैं, जिससे निश्चित रूप से हमें सफलता मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हममें ईश्वर के प्रति विश्वास है, हम आस्तिक हैं, तो हम जीवन में सफल और सुखी हो सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

अब विचार कीजिए, यदि हम ईश्वर पर तो विश्वास करते हैं, लेकिन स्वयं अपने पर नहीं करते हैं, तो क्या ऐसी अवस्था में भी जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेंगे? यदि हम कहें – मैं तो इस कार्य को कभी भी नहीं कर सकता, ईश्वर ही कर सकते हैं, तो क्या ऐसी अवस्था में भी कार्य सम्पन्न हो जाएगा? सम्भवत: नहीं। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए विश्वास आवश्यक है, लेकिन अनिवार्यत: स्वयं पर, अपनी क्षमताओं पर।

विश्वास व्यक्ति की अपनी मनोदशा है, चाहे वह स्वयं पर करे अथवा अन्य पर। दूसरे पर किया गया विश्वास भी करनेवाले के मन में ही तो घटित होता है, चाहे वह अन्य व्यक्तियों पर किया गया विश्वास हो अथवा ईश्वर पर किया गया विश्वास। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि नास्तिक वह नहीं, जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, अपितु नास्तिक वह है, जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता।

यदि आप स्वयं पर विश्वास नहीं करते, तो ईश्वर पर विश्वास करना निरर्थक है। यदि आपमें आत्मविश्वास है, तो आप वास्तव में आस्तिक हैं, यद्यपि आप पूजा-अर्चना जैसे बाह्य तत्त्वों से विमुख रहते हों। अब प्रश्न उठता है कि क्या हम आत्मविश्वास के सम्मुख ईश्वर पर विश्वास करना छोड़ दें? नहीं ऐसा भी नहीं है। वस्तुत: आस्तिकता और आत्मविश्वास दोनों एक ही हैं। आस्तिकता आत्मविश्वास उत्पन्न करने का साधन अथवा मार्ग है। ईश्वर में विश्वास अथवा आस्तिकता द्वारा हम स्वयं में आत्मविश्वास उत्पन्न कर अपनी आत्मशक्ति का ही जागरण करते हैं। आस्तिकता में जहाँ तक ईश्वर में विश्वास का प्रश्न है, हमारा ईश्वर नितान्त हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप होता है। उसे हम स्वयं निर्मित करते हैं और इस विश्वास के साथ कि हम जो माँगेंगे, वह उसे पूरा करेगा। हमें पूर्ण विश्वास होता है कि हमारी माँगें पूरी होंगी। यह भी आत्मविश्वास का ही एक रूप है। अत: आस्तिकता आत्मविश्वास से भिन्न नहीं है।

भूमि के गर्भ में प्रवाहित अनन्त जलराशि की तरह मनुष्य अनन्त सम्भावनाओं का स्रोत है। जब तक हम उस जल तक नहीं पहुँचते, तब तक उससे वंचित रहते हैं। कुआँ खोदकर या नलकूप लगाकर उस अपार जलराशि से जुड़ा जा सकता है, उसे प्राप्त किया जा सकता है। कुआँ या नलकूप जल नहीं है, अपितु जल तक पहुँचने का माध्यम है। अपार जलराशि का दोहन करने के लिए किसी न किसी माध्यम

की आवश्यकता पड़ती है और उसे हम ही तलाशते हैं। मनुष्य की क्षमता भी अपरिमित है और उसके विकास के लिए, उसको जानने, खोजने और समुचित उपयोग करने के लिए आत्मविश्वास रूपी माध्यम अत्यन्त आवश्यक है। जीवन में आगे बढ़ने के लिए सफलता प्राप्त करने के लिए तथा खेलों में विजय प्राप्त करने के लिए शारीरिक बल की अपेक्षा अधिक जरूरी है आत्मविश्वास। आत्मविश्वास से ही सभी साधन जुट पाते हैं।

विल्मा रुडोल्फ (२३.६.१९४० से १२.११.१९९४)

आत्मविश्वास हो, तो शारीरिक बल की कमी ही नहीं, अपितु विकलांगता भी सफलता में बाधा नहीं बनती। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। १९६० में रोम में आयोजित ओलंपिक खेलों में अपने अपरिमित आत्मविश्वास के कारण ही विल्मा रुडोल्फ नामक विकलांग बालिका ने अपने प्रदर्शन से संसार को चमत्कृत कर दिया और विश्व की सबसे तेज धाविका कहलाई। विल्मा रुडोल्फ एक अश्वेत बालिका थी। उसका पालन-पोषण बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में हुआ। चार वर्ष की उम्र में ही उसे डबल निमोनिया हो गया था। उसके बाद काला-बुखार होने से उसे पोलियो हो गया। इसके लिए उसे पैरों में ब्रेस पहननी पड़ी। वह ग्यारह वर्ष की उम्र तक बिना सहारे के चल-फिर भी नहीं सकती थी। लेकिन उसने एक सपना पाल रखा था कि उसे विश्व की सबसे तेज धाविका बनना है। डॉक्टरों के मना करने के बावजूद विल्मा ने अपने पैरों की ब्रेस उतार फेंकी और स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर अभ्यास में जुट गई। अपने विश्वास को उसने इतना ऊँचा और दृढ़ बना लिया कि असम्भव-सी लगनेवाली बात को पूरा कर दिखलाया। उसका एक साथ तीन स्पर्धाओं में स्वर्ण पदक प्राप्त करना, मात्र उसकी तेज गति का प्रमाण नहीं था, अपितु इस बात का भी प्रमाण था कि यदि व्यक्ति में पूर्ण आत्मविश्वास है, तो उसकी शारीरिक बाधाएँ भी दूर होने में देर नहीं लगतीं।

हमारे विकास में सबसे बड़ी बाधा है आत्मविश्वास का अभाव, न कि शारीरिक बल की कमी और विकलांगता या आर्थिक अभाव। मन-मस्तिष्क को कभी विकलांग मत होने दीजिए। आपका उत्कट आत्मविश्वास असंभव को संभव बना देगा। वैसे भी यदि आप स्वयं अपने पर विश्वास नहीं करेंगे, तो और कौन आप पर विश्वास करेगा?

अब प्रश्न उठता है कि यदि व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी है, तो इसको कैसे दूर किया जाए? इसके लिए ध्यान-साधना अथवा संकल्प-शक्ति योग का सहारा लिया जा सकता है। सकारात्मक भावधारा का निर्माण भी लाभदायक है। आत्मविश्वास की प्राप्ति और उसे सुदृढ़ करने के लिए शान्त-स्थिर होकर निम्नलिखित स्वीकारोक्तियाँ अथवा प्रतिज्ञा करें :

* मैं असीम शक्ति का स्रोत हूँ।

* मैं अपनी असीम अन्त:शक्ति द्वारा हर कार्य करने में समर्थ और सक्षम हूँ।

* मैं आत्मविश्वास तथा उत्साह से परिपूर्ण हूँ और प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करता हूँ।

इन स्वीकारोक्तियों अथवा वाक्यों को बार-बार दोहराने से आपमें एक नई ऊर्जा का संचार होने लगेगा और आत्मविश्वास के स्तर में वृद्धि होगी।

कई बार छद्म आत्मविश्वास या आत्मविश्वास की भ्रान्ति के कारण अहंकार पैदा हो जाता है। अत: इस दिशा में सचेत रहना भी अनिवार्य है। अहंकार हमारे आन्तरिक बल को नष्ट कर हमारे आत्मविश्वास के स्तर को दुर्बल कर देता है। इसलिए अहंकार से बचने के लिए आस्तिकता की आवश्यकता है। हर कार्य को यथासम्भव निष्काम भाव से सम्पन्न कर उसकी सफलता के लिए जब ईश्वर के प्रति कृतज्ञता भी होगी, तब न तो अहंकार ही सिर उठा सकता है और न ही आत्मविश्वास ही कभी कमजोर पड़ सकता है। जो भी हो, आत्मविश्वास बनाए रखना आवश्यक है और इसके लिए आस्तिक भी बनना पड़े, तो घाटे का सौदा नहीं है। लेकिन आस्तिक भी बनें, तो पूर्ण आत्मविश्वास के साथ। आधे-अधूरे आत्मविश्वास से न तो भौतिक सफलता ही सम्भव है और न आध्यात्मिक उन्नति ही।

अत: अपने अन्तर्निहित आत्मविश्वास को पूर्णत: विकसित करें और जगत के सभी क्षेत्रों में विजय-ध्वज को लहराते रहें। OOO

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५६)

स्वामी भूतेशानन्द

महाराज – क्या तुम सोचते हो कि चतुर्दश भुवन नीचे से एक-पर-एक है? ऐसा नहीं है। वह सब कल्पना है। अभी बात है कि ये सब तो इन्द्रियगम्य नहीं हैं, शास्त्रगम्य हैं – शास्त्र में कहा गया है।

– किन्तु महाराज! स्वामीजी या अभेदानन्दजी ने जिस ब्रह्माण्डविज्ञान की वैज्ञानिक भित्ति से, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्याख्या करने का प्रयास किया है, क्या उसी प्रकार से इन सबकी व्याख्या नहीं की जा सकती?

महाराज – विज्ञान इन सबकी क्या व्याख्या करेगा? ये सब इन्द्रियग्राह्य विषय से बाहर हैं। विज्ञान पंचेन्द्रियग्राह्य विषय के बाहर कुछ नहीं जानता है।

प्रश्न – महाराज! पंचीकरण की बात तो समाप्त हुई नहीं।

महाराज – अभी तो बताया – पंचभूत है – पृथ्वी, जल, पावक, पवन, आकाश। प्रत्येक में पाँच उपादान – (रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श) है। लेकिन ये पाँच अलग नाम क्यों हुआ? कह सकते हो कि एक नाम होने से ही तो हो जाता। नहीं, उसका कारण यह है कि प्रत्येक में पाँच उपादान रहने पर भी, प्रत्येक में एक उपादान की प्रधानता रहती है। उपादान का विशेष गुण उसमें अधिक मात्रा में है। अन्य उपादान कम मात्रा में रहने पर वे सूक्ष्म हैं। जैसे पृथ्वी का गुण गंध है। गंध सबमें है, किन्तु पृथ्वी में अधिक है – अर्थात् आठ आना है और बाकी चार दो-दो आना है, पूरा सोलह आना मिल गया। यही तो गणित है।

– यह तो इच्छानुसार निर्धारित कर दिया गया है।

महाराज – इच्छानुसार नहीं, गणित के अनुसार किया गया है।

– प्रयोगशाला में ये सब लेकर विश्लेषण करने पर ऐसा अनुपात मिलेगा क्या?

महाराज – ये सब सूक्ष्मभूत हैं। सूक्ष्म भूतों को अन्य वस्तुओं के समान प्रयोगशाला में विश्लेषण नहीं किया जाता है।

प्रश्न – महाराज! हमलोगों अर्थात् संन्यासी और ब्रह्मचारियों को तीन व्रतों पर ध्यान देना होता है – पवित्रता, दीनता–अकिंचनता और निष्ठा। पवित्रता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'कायमनोवाक्ये' तन-मन-वाणी से पवित्रता होनी चाहिए। इन तीनों व्रतों की ही तो आवश्यकता। किन्तु कितनी आवश्यकता है?

महाराज – कितनी आवश्यकता है, यह क्या बात है? इसका कोई मापदण्ड है क्या? इसकी पूर्ण आवश्यकता है। पूर्ण पवित्रता की आवश्यकता है। वहाँ कोई समझौता नहीं चलता है। इतना पवित्र होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

– कहा जाता है कि वस्तु-प्राप्ति हेतु पूर्णत: पवित्रता की आवश्यकता है। पुन: कहा जाता है – पूर्ण पवित्र होने से वस्तु-प्राप्ति होगी।

महाराज – पूर्ण पवित्रता और वस्तु-प्राप्ति क्या अलग है? क्या वस्तुप्राप्ति का अर्थ है कि ऊपर से कोई वस्तु आकर हठात् सामने गिर पड़ेगी? नहीं, पूर्ण पवित्र होने का अर्थ ही वस्तुप्राप्ति है।

– महाराज! कहा गया – तन-मन-वाणी से पवित्रता का प्रयोजन है। लेकिन श्रीमाँ ने कहा है – 'कलियुग में मानसिक पाप, पाप नहीं है।''

महाराज – तुम क्या कलियुग चाहते हो या सत्य चाहते हो?

– हमलोग तो कलियुग में ही हैं।

महाराज – कलियुग में हो, अर्थात् कलियुग के जो गुण कहे गये हैं, वे सब करते हो। क्या उन्हें करोगे? कलियुग को चाहते हो या कलियुग का अतिक्रमण करना चाहते हो?

प्रश्न – महाराज! दीनता-अकिंचनता के सम्बन्ध में पहले भी चर्चा हुई है। आपने एक दिन कहा था – हम लोगों के पास रुपया-पैसा नहीं रहना चाहिए।

महाराज – रुपया पैसा नहीं रहेगा, अर्थात्, रुपये-पैसे के प्रति ममत्व नहीं रहेगा। रुपये के प्रति ममत्व नहीं रहने

से तो, वह मिट्टी के ढेले के समान है। जिसका धन के प्रति ममत्व नहीं है, उसके लिए मिट्टी और रुपया समान है।

– किन्तु महाराज, विशेष परिस्थिति में अपने पास व्यक्तिगत कुछ रुपया-पैसा रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है। व्यक्तिगत कुछ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति आश्रम से नहीं की जाती है, या की नहीं जा सकती हैं। यदि उन सब की पूर्ति आश्रम करे, तो रुपए रखने की आवश्यकता नहीं है।

महाराज – इसका अर्थ है – आश्रम से प्राप्त करना है। वैसा नहीं होगा।

– तब, क्या करें?

महाराज – तब, क्या करें? मर जाओगे! शरीर को शव समझोगे! (खूब दृढ़ता से बोलकर महाराज गम्भीर हैं।)

– अच्छा महाराज, अब निष्ठा पर चर्चा करते हैं। निष्ठा कितनी हो?

महाराज – ओ! कितनी निष्ठा, अर्थात् फिर से समझौते की बात बोल रहे हो। इसकी कोई सीमा नहीं होती। पूर्णत: पालन करना होता है। क्या सत्य-पालन ऐसा होता है कि थोड़ा-सा कर लें और थोड़ा-सा न करें? पहले ये बताओ – निष्ठा किसके प्रति? आदर्श के प्रति निष्ठा। क्या उसका दौड़-भाग होता है?

– कई बार हमलोगों को कुछ ऐसा करना पड़ता है, जिसके लिये मन पूर्ण रूप से साथ नहीं देता है। अर्थात् जैसे विवेक में आघात लगता है। मानो आदर्श से विच्युत होना पड़ता है। तब क्या करना चाहिए?

महाराज – संघ क्या है? क्या संघ आदर्श छोड़कर है? जितना ही आदर्श के प्रति अनुराग होगा, उतना ही आज्ञाकारी हो सकोगे, समर्पित हो सकोगे। जितना नहीं कर सको, उतना समझौता कर लो। जितना समझौता कर लोगे, उतना आदर्श कम हो गया, यह ध्यान रखना। ऐसा कार्य, जिसके करने से ऐसा लगता है कि आदर्श से दूर हो जाओगे, तो उसे मत करना। जैसे असत्य बात मत बोलना, जिससे चरित्र भ्रष्ट हो, वैसा कार्य मत करना।

– अच्छा महाराज! इस सम्बन्ध में तो सबको अपने विवेक का ही अनुसरण करना चाहिए?

महाराज – तब तो हो गया! अपने-अपने विवेक का अनुसरण नहीं करना है, जिसका शुद्ध मन है, उसके विवेक से अनुसरण करना होगा।

– महाराज! सम्भवत: महासचिव महाराज ने किसी को किसी केन्द्र में जाने का आदेश देकर कहा – "तुम वहाँ जाओ।।" यदि उसकी वहाँ कोई कठिनाई हो और वह वहाँ न जाय, तो क्या वह आदेश का उल्लंघन होगा?

महाराज – हाँ। उल्लंघन होगा।

– यदि महाराज को अपनी कठिनाई बता कर उन्हें सहमत करा सके?

महाराज – समझाने से ही तो हो गया। वास्तविक बात है – आत्मविश्लेषण करना होगा। विचार करके देखना होगा कि अपनी ही सुख-सुविधा खोजना उद्देश्य है या वास्तव में कुछ कठिनाई है। सुविधावादी को कहीं भी सुविधा नहीं होगी। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३५२ का शेष भाग

है। भ्रमवश उसने स्वेच्छानुसार धर्म की व्याख्या कर ली है। धर्म की वह व्याख्या माने? चूँकि हम रावण के राज्य में रह रहे हैं, रावण राजा है, स्वामी है, इसलिए उसकी आज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है। हनुमानजी के मुक्का लगने से उस भ्रम का निवारण हुआ। जब लंकिनी ने यह शब्द कह दिया –

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।। ५/४/१

यदि रावण राजा है, तो हनुमानजी को चोर समझा जायेगा और यदि स्वयं प्रभु कोसलपुर राजा हैं, तो उस पर जो बलात् अधिकार किए हुए रावण बैठा है, वह चोर माना जायेगा। इस प्रकार की भ्रान्ति का निवारण वेदान्त में किया गया है। मुख्य मान्यता यह है कि ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति की समस्या का समाधान होगा। ज्ञान के द्वारा भ्रम का निराकरण होगा, जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान होगा और इस तरह से जीव जो है, वह ब्रह्म से एकत्व का अनुभव करेगा। बात तो बड़ी ऊँची है और ऐसा भी लगता है कि बड़ी सरल है, पर सचमुच उतनी सरल है नहीं। सरल इसलिए नहीं है कि गोस्वामीजी ने कहा –

जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (क्रमश:)

गगन की थाली, सितारे चाँद सूरज

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

(गतांक से आगे)

अन्तर्भूत होते हुए भी लोकातीत

यह कहते हुए वेद के ऋषि आगे कहते हैं (१०.९०.३) कि यह तो उस परम पुरुष की महिमा है, पर वह स्वयं अपनी महिमा से भी महत्तर है, अर्थात् उसकी महिमा को पूर्णतया न जाना जा सकता है, न उसका वर्णन किया जा सकता है। यदि इस सारे पारावार को चार पादों में बाँटा जाए, तो केवल एक पाद ही यह सम्पूर्ण भौतिक जगत् है, शेष तीन पाद उस दिव्य ऊर्ध्वलोक में स्थित हैं :

एतावानस्यमहिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।

इसी मूल सिद्धान्त के अन्तर्गत वैष्णव इस जीव जगत् को लीलाविभूति और ऊर्ध्वलोक को, जो महाविष्णु का परमधाम है, त्रिपाद्विभूति की संज्ञा देते हैं। सारा पदार्थ जगत् उसके नीचे है। त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् में कहा गया है कि "ब्रह्म के चार पाद हैं – अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीयपाद ... उन चार पादों में एक नीचे का पाद ही अविद्यामिश्रित होता है। ऊपर के तीनों पाद शुद्ध ज्ञान, आनन्दस्वरूप, अखण्ड, अमित तेजोराशि के रूप में प्रकाशित रहते हैं। वे अनिर्वचनीय, अनिर्देश्य, आनन्दैकरसामृत हैं ...भगवान् विष्णु का यह परमधाम क्षीरसमुद्र के मध्य में स्थित अविनाशी अमृतकलश के समान दीख पड़ता है।....[१०]

मुण्डकोपनिषद के अनुसार वह परमेश्वर बुद्धिगम्य नहीं है। वह पकड़ में नहीं आता। गोत्र आदि से रहित है, नेत्र, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है। वह नित्य, सर्वव्यापक, सर्वगत, सूक्ष्मतम और अविनाशी है। उस समस्त प्राणियों के परम कारण को ज्ञानीजन सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं।[११] ऐसा होते हुए भी, "वह हाथ और पाँव के बिना सब वस्तुओं को ग्रहण करने वाला, वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है, आँखों के बिना ही वह सब कुछ देखता है, कानों के बिना सब कुछ सुनता है। जो कुछ भी जानने में आनेवाली वस्तुएँ हैं, उन्हें जानता है और उसे जाननेवाला कोई नहीं है। ज्ञानीपुरुष उसे महान आदि पुरुष कहते हैं।[१२]

त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद के श्रीमन्नारायण हों या मुण्डक, श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों के निरवयव निराकार परब्रह्म, जिनका कोई रूप-नाम नहीं है और सहस्रों जिनके नाम-रूप हैं, वे ही इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। गोस्वामी तुलसीदास के कोसलपति राघवेन्द्र राम भी वे ही हैं :

आदि अन्त कोउ जासु न पावा।
मति अनुमानि निगम अस गावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।[१३]

श्रीगुरु रामदास कहते हैं – "हरि तुम वड वडे वड ऊचे सो करहि तुघ भावीस" (कानडा महला ४, पृष्ठ १२९७) सगुण हो या निर्गुण, साकार हो या निराकार, त्रिपाद्विभूति स्थित हो या अनिर्देश्य, सर्वव्यापक, वही परब्रह्म सर्वोपरि है। वह नानक का निरंकार है – अकाल मूरति, सैभं/संभू (स्वयंभू) और अजूनि (अयोनि) है, जिसकी उपलब्धि सद्गुरु की कृपा से होती है। नानक कहते हैं कि उस निःसीम को किसी मंदिर की सीमा में कैसे बाँधा जा सकता है? उसकी आरती कैसे की जा सकती है? भला वे उसकी व्यक्तिपरक पूजा कैसे करें, जिसकी पूजा के लिये पूरी सृष्टि, जिसका वह सर्जक है, तत्पर है? उसकी आरती, पूजा और अर्चन तो तभी संभव है, जब उस विराट के साथ व्यक्ति के एकीकरण की अनुभूति सिद्ध हो सके, जब अन्तरात्मा के मौन संगीत में पूरे ब्रह्मांड का अनहद नाद सुनाई देने लगे।

सब कर परम प्रकासक जोई

नानक कहते हैं कि वही परम प्रकाश है और उसी के द्वारा सब प्रकाशित है। वे स्वयं उस प्रकाश का दर्शन करते हैं। "मैं जिधर देखता हूँ, मुझे सद्‌गुरु का प्रकाश ही दिखाई देता है –

जह देखा तह एक तूं सतिगुरु दीआ दिखाइ।।
जोति निरंतर जाणीअ नानक सहज सुभाइ।।

(सिरी महला १, पृष्ट ५५)

उपनिषदों में, भगवद्‌गीता में, रामचरितमानस में कहा गया है –

(१) हिरणमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मको विदुः।।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।[१४(i)]

'वह निर्मल निरवयव परब्रह्म प्रकाशमय परमकोश में विराजमान है। वह सर्वथा विशुद्ध, ज्योतियों की भी ज्योति है, जिसे आत्मवेत्ता जानते हैं। वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण और न ये बिजलियाँ ही कौंधती हैं। फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है? उसके प्रकाश से ही सब प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है।'

(२) न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।[१४(ii)]

'जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयंप्रकाश परमपद को न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि। वही मेरा परम धाम है।

(३) विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता।।
सब कर परम प्रकाशक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू।। [१४(iii)]

'विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा, ये सब एक की सहायता से एक चेतन होते हैं (अर्थात् जीवात्मा की सहायता से इन्द्रियों के देवता, उनसे इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से उनके विषय प्रकाशित होते हैं)। इन सबका जो परम प्रकाशक (अर्थात् जिससे इन सबका प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म, अयोध्याधिपति श्रीराम हैं।

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि दैवी पदार्थ स्वयं ज्योतिर्मय नहीं हैं। तो वे भला उसे ज्योति कैसे दिखा सकते हैं? वे तो स्वयं उसी से ज्योति प्राप्त करते हैं। नानक जब ऐसा विचार करते हुए आकाश को निहारते हैं, तो उन्हें अनुभव होता है कि वास्तविक ज्योति तो 'वह' है और सबमें उसी की ज्योति विद्यमान है, उसी ज्योति से सब ज्योतित हैं – **'सभि मैं जोति जोति है सोइ।। तिस दै चानणि सभि महि चानणु होइ।।** तो नानक को लगता है कि इस आरती के द्वारा उसी परब्रह्म से प्राप्त प्रकाश उस को अर्पित किया जा रहा है – **त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्।** उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट कैसे की जाए? सब कुछ तो उसी का है, उसे क्या दिया जाए? तो उसी की वस्तु उसे समर्पित करके उसे हम स्वयं ग्रहण करें, उसका प्रसाद मानकर, 'इदं न मम' के भाव से।

प्रकाश में अन्धकार

यदि ब्रह्माण्ड में सर्वत्र उस परब्रह्म का प्रकाश व्याप्त है और वह हमारे अन्तस्तल में विराजमान है, तो फिर जब हम अपने भीतर झाँकते हैं, तो क्यों हमें प्रकाश नहीं, अन्धकार दीखता है? इतना गहरा अंधकार कि हमें भीतर झाँकने में डर लगता है। **"जनम-जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु"**[१५]। कालिमा इतनी अन्तर में कि कुछ दिखाई ही नहीं देता। गुरुनानक कहते हैं कि जब जीव पर सद्‌गुरु की कृपा होती है, तब वह अन्तर्ज्योति उद्‌भासित होती है। जब जीव गुरु की शरण ग्रहण करता है, तभी मन के दर्पण पर लगी मलिनता दूर होती है और उसे प्रकाश का साक्षात्कार होता है। अन्यथा मलिनता छाई रहती है। अन्धकार बना रहता है।

गुरु ग्रंथ साहिब में गुरु की शरण ग्रहण करने पर, गुरु की कृपा, गुरु के आशीष पर बहुत बल दिया गया है। गुरु नानक के सदगुरु तो स्वयं परब्रह्म हैं, परवर्ती सिख गुरुओं के गुरुनानक हैं। इस गुरु-परम्परा के माध्यम से परवर्ती गुरुओं को नानक तथा नानक के माध्यम से परमेश्वर की कृपा प्राप्त होती है। गुरुनानक कहते हैं –

गुरमुखि चानणु चाणीअै मनमुखु मुगधु गुवारु।।
घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु।।

(सिरी महला १, पृष्ठ २०)

"जो गुरु की शरण ग्रहण करता है, उसे प्रकाश की अनुभूति होती है। शेष अज्ञानी जन भ्रमवश विषयों में उस प्रकाश को ढूँढ़ते हैं। गुरु के मार्गदर्शन में जीव निरन्तर उस ज्योति का दर्शन करता है, जो प्रत्येक हृदय में प्रकाशित है।"

संस्कृत के धर्मग्रंथों में भी गुरु के इस महत्त्व को स्थान-स्थान पर रेखांकित किया गया है। गुरु-गीता के एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है, "हम गुरु चरणों की वन्दना करते हैं, जो अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए शिष्यों के नेत्रों को ज्ञान के अंजन की शलाका से खोलते हैं –

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में भी गुरु के महत्त्व का स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है। गोस्वामीजी ने मानस का प्रारम्भ ही गुरु-वन्दना से करते हुए कहा है :

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहि करि बिमल विवेक बिलोचन।
बरनऊँ राम चरित भव मोचन।।(२/१)

"श्रीगुरु महाराज के चरण-कमलों के रज कोमल और सुन्दर हैं, यह नयनामृत-अञ्जन नेत्रों के दोषों का नाश करनेवाला है। उस अञ्जन से विवेकरूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसाररूपी बन्धन से मुक्त करानेवाले श्रीरामचरित्र का वर्णन करता हूँ।"

गुरु अर्जन कहते हैं –

सगल तिआगि गुर सरणी आइआ राखहु राखन हारे।।
..करि किरपा गुरदेव दइआला गुण गावा नित सुआमी।।

(सूही महला ५, पृष्ठ ७५०)

'मैं सब कुछ त्याग कर गुरु की शरण में आया हूँ। हे मेरे रक्षक! मेरी रक्षा करो। ... हे दयालु गुरु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं उस परमेश्वर का निरन्तर गुण-गान करूँ।"

जब वह स्वामी प्रसन्न होता है, जब वह चाहता है, जैसा वह चाहता है, तभी वैसे ही, वैसी ही, यह आरती सम्भव होती है।

मयूर और मेघ

गुरु नानक हरिकृपा का आह्वान करते हुए इस आरती का उपसंहार करते हैं। वे ईश्वर के चरण कमलों के अमृत की प्यास रात-दिन वैसे करते हैं, जैसे वर्षा ऋतु में मयूर बादलों की बाट जोहता है। जब आकाश में बादल छाते हैं और भूमि पर जल बरसता है, तब वह आनन्द-विभोर होकर नृत्य करता है। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि कहते हैं –

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि।[१६]

"वन भूमि वर्षा के जल से भर गई है और मयूर नृत्योत्सव मना रहे हैं।" इसी प्रकार जब गुरु-कृपा शिष्य पर बरसती है, तब उसे तो परमानन्द की प्राप्ति होती ही है, उसका मन मयूर तो नाचने लगता ही है, उसके आस-पास का वातावरण भी रस से आप्लावित हो जाता है।

गुरुबाणी में नदरि – कृपा-दृष्टि पर अत्यधिक बल दिया गया है। तप और यज्ञ से, ज्ञान और पाण्डित्य से, योग और समाधि से ईश्वर प्रसन्न नहीं होते। केवल प्रेम और भक्ति से ही वे अपनी कृपा से अपने दास को कृतार्थ करते हैं। भक्तिसूत्र में नारद कहते हैं, "उस परम सत्य की उपलब्धि केवल प्रेम से, केवल प्रेम से ही होती है। यह प्रेम ही सर्वोपरि है – **त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी, भक्तिरेव गरीयसी।**"[१७] गुरु अमरदास कहते हैं –

नदरि करहि जे आपणी आपे लैहि सवारि।। तथा
भुलिआ आपि समझाइसी जा कउ नदरि करे।।

(सलोक महला ३, ६३-२, ६७-१, पृष्ट १४२)

उपनिषद् का कथन है –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।[१८]

"वह परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, और न ही बहुत से शास्त्रों को पढ़ने-सुनने से प्राप्त हो सकते हैं। वे तो उसी को प्राप्त होते हैं, जिसका वे स्वयं वरण कर लेते हैं।" लगभग ऐसा ही ऊपर गुरु अमरदास का कथन है, 'जिस पर वे कृपा-दृष्टि करते हैं, उसकी बिगड़ी वे स्वयं ही सुधार लेते हैं। जिस पर उनकी कृपा होती है, उस भूले-भटके को भी वे आप ही समझा देते हैं।

विश्वरूप दर्शन, पूजन और आरती

इस आरती द्वारा गुरुनानक ने उस विश्वव्यापी, विराट तत्त्व, अकाल पुरख को मानो अपनी दृष्टि में समेट लिया

है, असीम को अपने दिव्य-चक्षुओं में सीमित कर लिया है। सारे प्राकृतिक तत्त्व - वायु अन्तरिक्ष, नदियाँ, सागर, पृथ्वी, इन्द्र, धर्मराज, सूर्य, चन्द्र, सिद्ध, ज्ञानी, आकाश, शूरवीर, योद्धा, सभी अपने कर्तव्य का उन्हीं परमात्मा के आदेशानुसार पालन करते हैं। यही नानक के शब्दों में उस निरंकार की आरती है। वही परम सत्य है, वही ज्योति है, सभी नाम-रूप, उसी अनाम-अरूप के हैं। एकमात्र वही निर्भय है। उस स्वामी के आदेश का पालन करना सबके लिये अनिवार्य है। ऐसा करने पर ही उसकी आरती सम्पन्न होती है।

नानक उसी की शरण ग्रहण करते हैं और उसके चरणामृत की याचना करते हैं, ताकि उनकी तृषा की निवृत्ति हो सके और वे सदा उसके नाम-स्मरण में मग्न रहें।[१९]

OOO (समाप्त)

अन्त्य-संकेत :- १०. ''कथं पादचतुष्टयस्य भेद:। अविद्यापाद: प्रथम: पादो विद्यापादो द्वितीय:। आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीयपादस्तुरीय इति।...तत्राधस्तनमेकं पादमविद्याशबलं भवति। उपरितनपादत्रयं शुद्धबोधानन्दलक्षणममृतं भवति। तच्चालौकिकपरमानन्दलक्षणामित-तेजोराशिर्ज्वलति। तच्चानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसामृतात्मकं भवति।... दुग्धोदधिमध्यस्थिामृतकलशवद्वैष्णवं धाम परमं संदृश्यते। ...' (द्रष्टव्य: नारायणरामआचार्य: ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषद्, त्रिपाद्विभूमितिमहानारायणोपनिषद्।। निर्णयसागर मुद्रणालयम् मुंबई, १९४८) पृष्ठ ३५९, **११.** यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रवर्णमचक्षु:श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:।। – मुण्डकोपनिषद् (१/१/६), **१२.** अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षु: स श्रृणोत्यकर्ण:। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्य पुरुषं महान्तम्।। – श्वेताश्वरउपनिषद् (३/१९), **१३.** रामचरितमानस (१/११८, २-४), **१४. (i)** मुण्डकोपनिषद् (२/२/९-१०), (गीताप्रेस, गोरखपुर उपनिषद, अंक (कल्याण) Radhakrishnan: Principal Upanisads 2/2/10-11)। कठोपनिषद् (२/२/१५) श्वेताश्वतर उपनिषद् (६/१४)। **(ii)** भगवद् गीता (१५.६)। **(iii)** रामचरितमानस १/११७/३-४), **१५.** श्रीगुरु अमरदास (सलोकमहला ३, पृष्ठ ६५१), **१६.** वाल्मीकि रामायण, ४/८/२१), **१७.** नारदभक्ति-सूत्र - ८१, **१८.** कठोपनिषद् १/२/२३,

१९. भै विचि पवणु बहै सदवाल।। भै विचि चलहि लख दरीआउ।।
भै विचि अगिनि कढै वेगारि।। भै विचि धरती दबी भारि।।
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि।। भै विचि राजा धरम दुआरू।।
भै विचि सूरज भै विचि चंदु।। कोह करोड़ी चलत न अंतु।।
भै विचि सिघ बुध सुरनाथ।। भै विचि आडाणे आकास।।
भै विचि जोध महाबल सूर।। भै विचि आवहि जावहि पूर।।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरिलेखु। नानक निरभउ निरंकार सचु एक।।
(आसा महला १, पृष्ठ ४६४)

द्रष्टव्य – भीषास्माद्वात: पवते। भीषोदेति सूर्य:। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पंचम इति। (अर्थात् इस परब्रह्म के भय से पवन चलता है। भय से सूर्य उदय होता है। इसी के भये से अग्नि और इन्द्र और पाँचवाँ मृत्यु, तत्परता से अपना-अपना कार्य कर रहे हैं।) – (तैत्तिरीय उपनिषद् - २/८/१)

कविता

एक संदेश बन जाओ तुम

स्वामी ओजोमयानन्द

**खौलते खून की स्याही से, मेरी कविता कहती है।
उठो, जागो, संघर्ष करो, जैसे नदियाँ बहती हैं।
जो करते हैं प्रयास निरन्तर, वे ही लोग सफल होते ।
जो आलस्य की चादर ओढ़े, वे ही सदा बोझ ढोते ।।
नहीं ठहरता समय कभी, तुमको ही दौड़ लगाना है।
अपने जीवन की गुत्थी को, तुमको ही सुलझाना है।
उचित समय पर उचित कार्य, यही सफलता की चाबी ।
जिसने समझा यह रहस्य, वह मानव ही है बड़भागी ।।
खेल-खेल में अपना यौवन, बस यूँ ही ना ढल जाए।
अनमोल यह मानव जीवन, पल-पल यूँ ना बह जाए।।
उड़ना है आकाश से ऊँचा, जड़ जमाए भी रखना ।
हार-जीत में हँस-हँसकर, दोनों का रस है चखना।
जो मृत्यु से डरते हैं, वे डर-डरकर मर जाएँगें।
गिर-गिरकर फिर उठनेवाले, अपना ध्वज फहराएँगे ।।
मकड़-जाल बुननेवाले, एक दिन स्वयं फँस जाएँगे।
शूर-वीर रण-योद्धा ही, विजय वीरगति पाएँगे ।।
हौसलों से जीत होती, यदि इसका कोई साथी है।
पूरा जंगल जलाने को, बस एक चिनगारी काफी है।
संकट की घड़ी यदि मँडराये, तेज तूफान बन जाओ तुम।
जीवन ऐसा जी कर जाओ, एक संदेश बन जाओ तुम।**

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३२)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

मुझे सन्देह है कि जीवन के इस सांध्यकाल में, अपनी इस स्मृतिकथा के बीच में, वर्तमान प्रसंग को लिपिबद्ध करने का सुयोग मिल सकेगा या नहीं। इसीलिये मैं यहीं पर ठाकुर के पुराने भक्त, बसुमती-साहित्य-मन्दिर के स्वनाम-धन्य संस्थापक उपेन्द्र के विषय में कुछ लिख रखना चाहता हूँ। जब वह दक्षिणेश्वर में ठाकुर का दर्शन करने आता, तो एक दिन ठाकुर ने कमरे में भरे हुए भक्तों के बीच, उंगली के द्वारा उपेन की ओर संकेत करते हुए कहा था, "यह लड़का थोड़े धन की कामना से मेरे पास आवागमन करता है।"

बटतला में वैष्णव बसाक के पुस्तक की दुकान के पास ही, सड़क के पश्चिमी किनारे पर उपेन्द्र की पुस्तकों की एक छोटी-सी दुकान थी । धार्मिक पुस्तकें खरीदने के लिये जाकर मुझे उपेन्द्र की छोटी-सी दुकान में रामगीता, ज्ञान-संकलनी तंत्र, उत्तरगीता आदि पुस्तकें देखने को मिली थीं। 'महिला', 'वर्षवर्तन' तथा 'सविता-सुदर्शन' आदि कवि सुरेन्द्रनाथ मजुमदार के सभी ग्रन्थों का एकमात्र विक्रेता उपेन्द्र ही था। उसकी दुकान से मैंने – 'वर्षवर्तन' तथा 'सविता-सुदर्शन' की असंख्य प्रतियाँ खरीदी थीं। बाद में, ठाकुरजी के निकट उसके साथ परिचय हो जाने के बाद मैं अहीरीटोला में उन लोगों के घर के पास स्थित एक विशाल तमाल-वृक्ष को देखने गया था।

साधुसेवा में उपेन्द्र का कैसा अनुराग था, इसी विषय में कुछ लिखता हूँ। ठाकुर की महासमाधि के थोड़े दिनों बाद, स्वामीजी आदि हम कुछ गुरुभाई अनाथ-असहाय अवस्था में, किसी-किसी दिन जब व्याकुल चित्त के साथ वराहनगर मठ से काँकुड़गाछी तक जाकर 'वाहे गुरुजी की फतह' गुरुदेव की यह जयध्वनि करते हुए ठाकुर के गृही भक्तों के घर-घर होते हुए, भूखे-प्यासे रात के करीब आठ बजे उपेन्द्र की उस छोटी-सी दुकान पर पहुँचते, तो उपेन्द्र तत्काल ही एक टोकनी विभिन्न प्रकार के खाद्यपदार्थ और दोने भर-भर पान खिलाकर हम लोगों को तरो-ताजा कर देता। बिडन गार्डेन के किनारे छकड़ा गाड़ियों का अड्डा था; वहाँ गाड़ीवान "वराहनगर! काशीपुर! चार पैसे" कह-कह कर आवाज देते रहते थे। उपेन्द्र भाड़ा चुकाकर हमें उसी गाड़ी में चढ़ा देता। इसी प्रकार उसने कितने ही दिन हमें खिला-पिलाकर वराहनगर की गाड़ी में बैठा दिया था। ज्ञानानन्द अवधूत (नित्यगोपाल) उन दिनों रामदादा के घर में रहते थे। वे प्रतिदिन शाम को उपेन्द्र की दुकान में आकर भीतर के अँधेरे कमरे में बैठे रहते और जलपान करने के बाद, थोड़ी रात गये लौट जाते।

१८८६ ई. में ठाकुर की महासमाधि के छह महीने बाद मैं उपेन्द्र की यही अवस्था देखता रहा। करीब तीन साल बाद, जब उत्तराखण्ड में मेरी स्वामी शिवानन्द से भेंट हुई, तो उन्हीं के मुख से मैंने सुना कि इस दौरान उपेन्द्र की आर्थिक स्थिति में अकल्पनीय उन्नति हुई है। तब तक वह सम्पत्तिशाली हो चुका था। उसकी 'ज्ञानांकुर' नामक मासिक पत्रिका काफी संख्या में बिकती थी। इस 'ज्ञानांकुर' पत्रिका में स्वामीजी का 'ईसानुसरण' ('Imitation of Christ') का बँगला अनुवाद) प्रकाशित होता था। परन्तु 'राजभाषा' नामक एक ही पुस्तक ने उपेन्द्र के भाग्य में परिवर्तन ला दिया था।

मैं पहले ही बता चुका हूँ कि उपेन्द्र की धन कमाने की इच्छा थी। ठाकुर के आशीर्वाद तथा साधुसेवा के फलस्वरूप ही उसकी आर्थिक रूप से उन्नति हुई थी। स्वामीजी कहते, "देख, वही उपेन आज क्या हो गया है! उसे देखकर यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि साधुसेवा का प्रभाव कैसा शीघ्र-फलदायी होता है।" अमेरिका से लौटने के बाद एक दिन उन्होंने उपेन की ओर संकेत करते हुए कहा था, "उपेन में 'business head' (व्यावसायिक बुद्धि) खूब है।" उस समय मैं वहीं उपस्थित था।

उसी उपेन्द्र की इकलौती सन्तान सतीशचन्द्र (खोका बाबू) ने ठाकुर के आशीर्वाद तथा पिता के पुण्यबल से अब तक उस व्यवसाय में कितनी प्रगति की है, यह किसी के लिये भी अज्ञात नहीं है।

हरिप्रसन्न (विज्ञानानन्द)

जब हम लोग आलमबाजार मठ में निवास करते थे, उन दिनों हरिप्रसन्न एटा (उ. प्र.) में जिला-अभियन्ता (Distict Engineer) थे। सुबोधानन्द ने अपने भ्रमण के दौरान एटा जाकर कुछ दिन हरिप्रसन्न के साथ निवास किया था। उन दिनों हमारे मठ में अभाव का जो दौर चल रहा था, सुबोधानन्द उसका भुक्तभोगी था। उसने हरिप्रसन्न को मठ की हालत से अवगत कराया और उनके द्वारा ६० रुपये मासिक सहायता की व्यवस्था की थी। कई महीनों तक नियमित रूप से वह सहायता प्राप्त होने से उन दिनों मठ के अभाव में काफी कमी आयी थी।

स्वामीजी के अमेरिका से लौटने के बाद, हरिप्रसन्न ने अपने छोटे भाई की शिक्षा तथा माता के भरण-पोषण की व्यवस्था की और तदुपरान्त आकर मठ में प्रविष्ट हो गये। तब तक हमारा मठ – बेलूड़ मठ के दक्षिण में स्थित नीलाम्बर बाबू के उद्यान-भवन में आ चुका था।

स्वामी ब्रह्मानन्द

महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) अधिकांशत: बागबाजार में बलराम बाबू के मकान में ही निवास करते थे। योगानन्द उनका साथ नहीं छोड़ते थे। एक दिन मैं आलमबाजार से अचानक ही बलराम बाबू के घर गया और महाराज से बोला, "तुम चलो, कम-से-कम कुछ दिन तो आलमबाजार मठ में हम लोगों के साथ रहो।" उन्होंने मेरे प्रस्ताव का प्रतिवाद नहीं किया। आलमबाजार मठ में हम दोनों एक ही कमरे में रहते थे। उनके साथ मेरे कुछ दिन बड़े ही आनन्द में बीते थे।

सुधीर तथा कृष्णलाल

उन दिनों सुधीर (शुद्धानन्द) यदा-कदा ही मठ में आया करता था। कृष्णलाल (धीरानन्द) अक्सर मठ में आता। उन दिनों वह योगानन्द के साथ श्रीमाताजी के मकान में रहता और उनकी सेवा किया करता था।

गैरिक-वस्त्रधारी प्रवंचक

एक दिन भोजन आदि के बाद रामकृष्णानन्द आदि हम कुछ लोग बाहर के कमरे में बैठकर हल्की-फुल्की बातें कर रहे थे, उसी समय शालग्राम निगलनेवाले, गैरिक-वस्त्रधारी काशी के जादूगरों की एक टोली वहाँ आ पहुँची। उनके शरीर पर कन्थे के समान, सामने से खुला हुआ गेरुए रंग के मोटे लबादे और हाथ में समुद्री नारियल के कमण्डलु थे। आते ही उन लोगों ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए बोलना शुरु किया, "ब्रह्मानन्द, योगानन्द, प्रेमानन्द, अखण्डानन्द, रामकृष्णानन्द ...।"

उन्हें पहचान कर मैंने उनसे पूछा, "अच्छा, तो ये नाम तुम्हें कहाँ से ज्ञात हुए?" रामकृष्णानन्द ने तत्काल मेरा शरीर दबाकर चुप रहने को कहा। परन्तु मैंने स्पष्ट हिन्दी में दो-चार बातें कह डाली। यहाँ दाल गलने की कोई सम्भावना न देखकर वे लोग चलते बने। उनके चले जाने पर रामकृष्णानन्द बोले – उन लोगों के थोड़ी देर तक रहने पर अच्छा मजा लिया जाता।

इस प्रकार के साधुवेश-धारियों के विषय में थोड़ी जानकारी दे देता हूँ। इनका प्रमुख अड्डा बनारस में है। ये लोग अपने गले में छोटा-सा पत्थर रखने का अभ्यास करते हुए क्रमश: शालग्राम शिला रखने के उपयुक्त गड्ढा बना लेते हैं। जरुरत पड़ने पर ये उसी में से शिला को निकालकर दिखा देते हैं और फिर पुन: निगलकर गले में रख लेते हैं। गृहस्थों के घर में जाकर ये लोग अपने मुख से शालग्राम निकालकर दिखाते हैं; फिर उनका भोग लगाने के बहाने अच्छी-अच्छी चीजें ठूँसकर खा लेते हैं। बाहर से किसी गृहस्थ की तीन पीढ़ियों का नाम जानकर उस गृहस्थ को वह सब सुनाकर उसे विस्मित कर देते हैं। इसके बाद गृहस्थ से ऐसा कुछ कहते हैं, "एक महीने के भीतर तुम्हारे ऊपर सर्पदंश का खतरा है।" यह सुनकर जब वह घबरा जाता है, तो वे कहते हैं, "भय की कोई बात नहीं! मुझे दस-बीस रुपये दे दो, तुम्हें एक कवच देकर उस पर काशी-विश्वनाथ के मस्तक का गंगाजल तथा बिल्वपत्र चढ़ाऊँगा, उसी से तुम्हारा संकट कट जाएगा।" इसके बाद वे एक छोटे-से कागज में थोड़ा सिन्दूर रखकर उसे हिलाते-डुलाते हैं । इसके बाद उस पर कुछ अक्षरों में कुछ लिखा हुआ दिखाई देता है। उसे देखकर मिथ्या भावी अमंगल की आशंका से ग्रस्त उस गृहस्थ को असीम विस्मय होता है। वह तत्काल माँगे गये रुपये देकर उन्हें विदा कर देता है। उस सफेद कागज पर मदार के दूध से वे लोग पहले से ही कोई वाक्य लिख रखते हैं। सिन्दूर डालकर उसे हिलाने-डुलाने पर वे अक्षर स्पष्ट रूप से उभर आते हैं। गृहस्थों को ठगने के, इसी तरह के और भी कई हथकण्डे ये लोग जानते हैं।

बाद में सुना कि मठ में जो लोग आये थे, वे स्वामीजी के घर भी गये और उनकी माँ को इसी प्रकार की बातें सुनाकर उनसे दस रुपये ठग ले गये थे। **(क्रमश:)**

जय जय जागनाथं

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

गंगातरंगरमणीयजटाकलापं
गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम्।
नारायणं प्रियं मनंग मदापहारं
नागेशं दारुकावने जय जय जागनाथम्।।

जिनकी जटायें गंगाजी की लहरों से सुन्दर प्रतीत होती हैं और जिनके वाम भाग में सदा पार्वती जी शोभा पाती हैं, जो नारायण के प्रिय और कामदेव के गर्व का नाश करनेवाले एवं देवदारु के वन में निवास करने वाले हैं, ऐसे 'जागनाथ' स्वयम्भू सदा शिव की जय हो।''

अलमोड़ा जनपद उत्तराखण्ड राज्य के अलमोड़ा से ३३ किलोमीटर की दूरी पर अलमोड़ा-दन्या मार्ग पर जटा गंगा की अविरल धारा के तट पर स्थित श्रीजागेश्वर दारुकावन एक अत्यन्त प्राकृतिक सुषमा से आवृत शिवभक्ति और महिमा का प्रोज्जवल स्थान है, जहाँ सुदूर भागों से भक्त वर्ष भर आते रहते हैं और पूजा-अर्चना कर अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं।

इस क्षेत्र में देवदारु के विशाल वृक्ष और सघन वनप्रदेश हैं, जहाँ शीतकाल में हिमपात होता है, तब इसकी छटा देखते ही बनती है। इन वृक्षों को भगवान शिव का स्वरूप माना जाता है। मन्दिर के समीप दो विशाल वृक्ष, भगवान शंकर की लिंग की भाँति नीचे से एक और ऊपर से दो भागों में विभक्त हैं। इन वृक्षों को क्षति पहुँचाना अनिष्ट माना जाता है और कोई ऐसा साहस नहीं करता। जो करता है, उसे प्रत्यक्ष विपत्ति का सामना करना पड़ता है। वृक्षों के विशेष महत्त्व के कारण 'नागेश' दारुकावने देवदारु वन के मध्य निवास करनेवाले 'शिव' नाम से यह स्थान पुराणों में वर्णित है।

ऐसी मान्यता है कि भगवान शिव 'यागीश्वर' के रूप में यहाँ पर बालक रूप में प्रकट हुए। सभी देवी-देवता उन्हें इस रूप में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे जगत् जननी माँ पार्वतीजी के साथ ही लिंग में शिवज्योति के रूप में यहाँ पर निवास करने लगे और तभी से सभी देवताओं का निवास भी इस क्षेत्र में माना गया है और यह बाल जागेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अलावा इसे नागेश, यागेश्वर और जागेश्वर आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

श्रीजागेश्वर दारुकावन

मन्दिर के मुख द्वार पर नन्दी और स्कन्दी भगवान के दो द्वार पाल हैं, जो अपने सभी आयुधों के साथ विद्यमान हैं। इसी प्रवेश द्वार पर गणेशजी की प्रतिमा प्रथम पूजित होती है। यहाँ पर शिवलिंग दो भागों में विभक्त है। उसमें बड़ा भाग शिव और छोटा वाम भाग पार्वतीजी का है।

शिव शक्ति के अन्दर निवास करते हैं। कहा जाता है यह लिंग अर्द्धनारीश्वर संसार में अनूठा है। शक्तिपीठ के सामने अखण्ड ज्योति जलती है। ऐसा कहते हैं कि यह ज्योति सतयुग से अखण्ड जल रही है। चन्द राजाओं में दीपचन्द राजा ने अपनी प्रतिमा बनाकर उसको भगवान के समक्ष अपने हाथों में प्रज्वलित किया, जो उस समय उनके सिर के समक्ष थी और तिलतिल नीचे खिसक रही है, ऐसी जनश्रुति है।

इस मन्दिर-समूह में छोटे-बड़े १२४ मन्दिर हैं, जिनमें महामृत्युंजय, हनुमानजी, पुष्टी देवी, केदारनाथ, भैरवनाथ, कुबेर, सूर्य, नवग्रह, नीलकण्ठ आदि मन्दिर प्रसिद्ध हैं। सबसे विशाल एवं सुन्दर मन्दिर महामृत्युंजय महादेव जी का है, जो पूर्व मुख है, जबकि मुख्य मन्दिर पश्चिमाभिमुख।

शेष भाग पृष्ठ ३८१ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (२०)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

उसी दिन सन्ध्या के समय हमलोग डॉक्टर की गाड़ी से शहर से दूर दक्षिणाकाली का दर्शन करने गये थे। हमने वहाँ पर दशमहाविद्या की मूर्ति और दो तान्त्रिकों को देखा। वापस आते समय बीच रास्ते में ही गाड़ी खराब हो गयी। उस समय रात्रि के आठ-नौ बज रहे होंगे। चारों ओर अन्धकार था। मार्ग निर्जन और ऊपर से हिमालय की ठण्डी हवा। हम चार लोग तथा साथ में ड्राइवर और गाइड थे। मैंने देखा, महाराज शान्त भाव से रास्ते के एक किनारे खड़े हैं। जबकि हमलोग किस प्रकार शहर पहुँचेंगे, इस दुश्चिन्ता से अशान्त थे। बहुत देर बाद मैंने देखा कि एक ट्रक आ रहा है। गाइड ने हाथ देकर गाड़ी को रुकवाया और हम सबको शहर पहुँचाने के लिए ड्राइवर को सहमत कर लिया। शिखरेश और मैंने महाराज को धक्का देकर उस ऊँचे ट्रक पर ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठा दिया और हम दोनों महाराज के पैरों के पास किसी तरह बैठ गये। पीयूष महाराज तथा और दो लोग ट्रक के पीछे खड़े हो गये। सड़क के किनारे निर्विकार रूप से महाराज को खड़ा देखकर मुझे ऐसा लगा, जैसे ये स्थितप्रज्ञ हैं। किसी भी चीज से विचलित नहीं होते। वह दृश्य आज भी मेरे मन में ज्वलन्त रूप से विद्यमान है।

काठमाण्डु एवं पाटन का कृष्ण मन्दिर, बुद्ध मन्दिर इत्यादि सबका दर्शन करके २६ अगस्त सन्ध्या को हमलोग कोलकाता पहुँचे। इण्डियन एयरलाइन्स विमान में महाराज और मैं पास-पास ही बैठे थे। नाश्ते में चाय और ठण्डा वेजिटेबल चॉप दिया गया था। मैंने नहीं खाया। महाराज ने खाया। बस और क्या था, काँकुड़गाछी आश्रम में आने के बाद ही महाराज का पेट बहुत खराब हो गया। यह समाचार मिलने पर मैंने महाराज को टेलीफोन किया। मैंने कहा, "आपने वह ठण्डा चॉप क्यों खाया? देखा नहीं आपने, मैंने नहीं खाया था।" उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा पेट तुम्हारे कारण खराब हुआ। तुमको नहीं मालूम कि मेरा बालक स्वभाव है। कोई जो कुछ भी देता है, मैं उसे खा लेता हूँ। तुमने मेरे हाथ से चॉप क्यों नहीं छीन लिया।" मैं सोचने लगा, इस प्रकार के बालकवत् साधु को लेकर चलना बहुत कठिन है।

काँकुड़गाछी में एक दिन मैंने महाराज से पूछा, "स्वामीजी ने जो 'Man-making religion' (मनुष्य निर्माण करनेवाला धर्म) के बारे में बताया है, वह कैसे होता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "एक व्यक्ति दूसरे अन्य व्यक्ति को दबाव डालकर उसे धार्मिक नहीं बना सकता। हमलोगों का कार्य है केवल उस प्रकार का वातावरण तैयार भर कर देना। उस आध्यात्मिक वातावरण में जो भी आयेगा, वह उससे बहुत प्रेरित होगा और अपने व्यक्तिगत जीवन को उस रास्ते पर ले जायेगा। यही है 'Man-making religion' (मनुष्य निर्माण करनेवाला धर्म)।"

एक दिन मैंने महाराज से कहा, गार्गी ने याज्ञवल्क्य से कहा था कि वे दो तीक्ष्ण बाणों को छोड़ेंगी अर्थात् प्रश्न करेंगी। मैं आज आप पर ६४ बाण छोड़ूँगा, ये सब श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के बहुत दुर्बोध शब्द हैं। आप उत्तर दीजिए। उन्होंने हँसते हुए कहा, "मैं तुम्हारे सभी बाणों को तोड़ दूँगा।" मैं वह सब लिखकर ले गया था। वे आनन्द से एक-के-बाद एक उत्तर देते गये। वे सभी प्रश्न एवं उनके उत्तर अभी भी मेरे पास उपलब्ध हैं।

१५/०९/१९७८ को उन्होंने मुझे लिखा था : "मेरे अमरनाथ दर्शन तथा हृदय की समस्या के बारे में तुमको सूचना मिल चुकी है। हृदय की समस्या होने पर भी मैं

बहुत आनन्द में था। शेषनाग में रात्रि में मुझे पहला दर्द हुआ। अगले दिन रात्रि में पंचतरनीर में दूसरी बार दर्द हुआ। तीसरे दिन रात्रि में शेषनाग वापस लौटने पर पुन: दर्द हुआ था। साथ में डॉक्टर, दवाई और ऑक्सीजन सब कुछ था और इन सबका उपयोग करने से कुछ समय के उपरान्त आराम मिला। किन्तु श्रीनगर आने पर ई.सी.जी करने के बाद देखा गया कि हृदय में कुछ खराबी हुई है। पहले से ही मुझे हृदयवेदना थी। समुद्र तल से वहाँ की (शेषनाग) ऊँचाई अधिक होने के कारण दर्द अपेक्षाकृत तीव्र अनुभव हो रहा था। ... कश्मीर में अमरनाथ और क्षीरभवानी के साथ स्वामीजी की स्मृति सम्बद्ध होने के कारण इन दोनों तीर्थस्थलों पर मेरा बहुत आकर्षण था। अभी घूमने की अधिक इच्छा नहीं है।''

काँकुड़गाछी में महाराज ने बहुत सुन्दर वातावरण का निर्माण किया था। सन्ध्या समय बहुत-से भक्तों का समागम होता था। महाराज घूमकर आने के बाद बाहर बैठते थे। एक दिन मैं भी उनके साथ घूमने गया था। भक्तगण अफीम खाये हुए मोर की तरह उनके पास आते और महाराज हँसी-मजाक करते हुए सत्संग किया करते थे। काँकुड़गाछी में उनकी साप्ताहिक कक्षाएँ बहुत हृदयस्पर्शी होती थीं। धन्य हैं भक्तगण! इनमें से कोई-कोई भक्त, महाराज के सभी व्याख्यानों एवं कक्षाओं को टेप करके रखते थे; जिससे बाद में अनेक अमूल्य ग्रन्थ – श्रीश्रीरामकृष्ण-वचनामृतप्रसंग, कठोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, श्रीमद्भागवत प्रकाशित हुए।

परवर्ती काल में, महाराज जब संघाध्यक्ष होकर बेलूड़ मठ गये, तब मैंने विनोद करते हुए उनसे कहा था, ''आप बिना कलम पकड़े लेखक बन गये। आपने वचनामृत का केवल तीन खण्ड ही पूरा किया है। अभी और दो खण्ड है!'' उन्होंने उत्तर दिया, ''काँकुड़गाछी में रहने पर पूरा हो सकता था। अभी सम्भव नहीं है।'' मैंने कहा, ''आपको संघाध्यक्ष करने से हमलोगों का नुकसान हुआ। ऐसा नहीं होने पर और कितने ही ग्रन्थ निर्मित हो सकते थे।'' महाराज हँसने लगे। शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में ठाकुर के वचनों की इतनी प्रांजल व्याख्या रामकृष्ण संघ के किसी भी संन्यासी ने नहीं किया। महाराज के व्याख्यानों को टेप करके रखने हेतु अमेरिका से मैं लोगों के द्वारा कैसेट-टेप भेजता था।

१९८२ ई. में मैं दूसरी बार भारत आया। ३० जुलाई, १९८२ को महाराज का दर्शन करने के लिए काँकुड़गाछी आश्रम गया। महाराज से दीक्षा के सम्बन्ध में कितना कुछ प्रश्न किया था। उन्होंने संक्षेप में कहा, ''मन्त्र का रहस्य है 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' अर्थात् जप का अर्थ या इष्ट का चिन्तन करना। मन्त्र-जप के साथ-साथ ध्यान करना।'' मैंने कहा – 'किस प्रकार?' महाराज ने उत्तर दिया – ''गुण के साथ। वे करुणानिधान, कृपासिन्धु, पवित्रता एवं त्याग की मूर्ति हैं। गोपियाँ कृष्ण का विविध प्रकार से ध्यान करती थीं। जिसके पास जैसा आकर्षण हो। अपनत्व को लाना ही मुख्य बात है। माँ सन्तान को प्रेम करती है, इसमें कोई दर्शन या युक्ति नहीं होती। क्यों प्रेम करती है, इसे वह नहीं जानती।

'' 'इष्ट' शब्द ईष् धातु से आया है। ये हमारे इच्छित, वांछित हैं। मैं उनको पाने की इच्छा करता हूँ। आदर्श हुआ – मैं यह होने की इच्छा करता हूँ।

''मन्त्र – ऊँ ब्रह्म का प्रतीक है, बीज शक्ति का प्रतीक है एवं इष्ट अवतार या किसी देवता के प्रतीक हैं। ब्रह्म, शक्ति एवं अवतार एक हैं।

''कर-जप अच्छा है, उपयुक्त है। उपांशु जप में ओठ थोड़ा-सा हिलता है, किन्तु मानस-जप में ओठ नहीं हिलना चाहिए। श्वास के साथ जप करना सबके लिए आवश्यक नहीं है। नित्य निश्चित संख्या में जप करने को 'पुरश्चरण' कहते हैं।

''जप का फल – जो वासना है, भगवत्-कृपा से वह प्राप्त होगी। अभ्युदय की इच्छा होने पर वह मिलेगा। भगवान को चाहने पर भगवान मिलेंगे। वे दयामय हैं, भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं, जिस प्रकार माँ सन्तान की सभी इच्छाओं को पूर्ण करती है।''

१६ मार्च, १९९८ को मैंने महाराज को लिखा था : ''हमारे संघ में साधन-भजन के सम्बन्ध में दो प्रामाणिक पुस्तकें हैं – ध्यान, धर्म और साधना तथा परमार्थ प्रसंग। जप-ध्यान से सम्बन्धित हमारे मन में कई प्रकार के प्रश्न उठते हैं। दीक्षा के समय अनेक लोग एक साथ दीक्षा ग्रहण करते हैं तथा कई संकोचवश प्रश्न नहीं करते। इसके साथ-ही-साथ, कई लोगों की दीक्षा, गुरु, मन्त्र के सम्बन्ध में अच्छी धारणा भी नहीं है। इसीलिए ये सब प्रश्न अविलम्ब जो भी मेरे मन में आया, मैंने लिख दिया। यदि आप कृपा करके अपने समय एवं सुविधानुसार विस्तृत रूप से (संक्षेप में नहीं) टेप में बोलेंगे, तो बहुत अच्छा होगा। यह एक मूल्यवान संग्रह हो सकता है और पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित भी किया जा सकता है। आप तो अपने

कर-कलम से लिखेंगे नहीं। अत: यह मेरी तथा कई लोगों की अभिलाषा है।'' मैंने ४२ प्रश्न भेजे थे। २२ अप्रैल, १९९८ को स्वामी नित्यमुक्तानन्द ने मेरे प्रश्न के उत्तर में लिखा था : ''आपके प्रश्नों का उत्तर देना अभी भी प्रारम्भ नहीं हुआ है। ऐसा लगता है कि समय लगेगा।'' इसके बाद ही अगस्त महीने में महाराज महासमाधि में लीन हो गये।

१९८२ ई. में मैं जापान गया था। उस समय वहाँ का Nippon Vedanta Kyokai बेलूड़ मठ में सम्मिलित नहीं किया गया था। जापान में महाराज के बहुत-से दीक्षित भक्त थे। उनलोगों का महाराज के प्रति भक्ति-विश्वास को देखकर मैं अभिभूत हो गया था। १४ दिसम्बर, १९८२ को महाराज ने जलपाईगुड़ी से मुझे लिखा था : ''जापानी भक्तों ने चिट्ठी द्वारा मुझे बताया कि वे सब तुमको वहाँ पाकर बहुत आनन्दित हुये हैं। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। किसी भी संन्यासी को वहाँ स्थायी रूप से रहने के लिए अभी तक नहीं भेजा गया, इसलिए वे सब दुखित हैं।'' १९८४ ई. में वह केन्द्र बेलूड़ मठ में सम्मिलित कर लिया गया।

२ फरवरी, १९८६ ई. को महाराज ने लिखा था : ''जुलाई महीने में तुम आ रहे हो, यह सुनकर बहुत आनन्द हुआ।...आजकल मेरा बाहर जाना बहुत अधिक हो गया है। यद्यपि मैं यह आशा करता हूँ कि जुलाई महीने में आने के बाद तुम मुझसे भेंट किये बिना वापस नहीं जाओगे। तुम्हारा निश्चित कार्यक्रम पाने के बाद उसी के अनुसार (मैं अपना कार्यक्रम) समायोजित करने का प्रयत्न करूँगा।'' मेरे जैसे एक नगण्य व्यक्ति के लिए उनके मन में अपरिमित स्नेह था, इसका स्मरण करके मेरे मन में एक अलौकि आनन्द का अनुभव होता है। जन्माष्टमी के पूर्व दिन (२६ अगस्त, १९८६) काँकुड़गाछी जाने पर, महाराज बनावटी क्रोध दिखाते हुए बोले, ''देखो, यहाँ पर तीन रात ठहरना होगा। सुन लो, पुलिस कमिश्नर (विकाशकली वसु) मेरा भक्त है। यदि नहीं रुकोगे, तो तुमको घर में बन्दी करके रखा जायेगा।'' मैंने उस दिन काँकुड़गाछी में जनसमुद्र देखा। महाराज एक सामियाना के नीचे बैठकर भक्तों का प्रणाम स्वीकार कर रहे थे। गर्मी के कारण उनको बहुत कष्ट हो रहा था। मुझे भय हुआ कि कहीं वे अस्वस्थ न हो जाएँ। शिखरेश ने इसी बीच किसी समय महाराज को नारियल का पानी पिला दिया। वे शरीर को भूलकर प्रसन्न चित्त से भक्तों को दर्शन देने लगे।

१९८८ ई. में सेन्ट लुइस वेदान्त सोसाइटी, अमेरिका की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में हमने महाराज को निमन्त्रण दिया तथा उनके टिकट का रुपया भेज दिया था। महाराज, स्वामी नित्यमुक्तानन्द को साथ में लेकर टोकियो से १८ अगस्त को लॉस एंजेल्स पहुँचे। स्वाहानन्दजी, मैं और कई भक्त हवाईअड्डा पर महाराज के स्वागत के लिए उपस्थित थे। थके हुए महाराज से वहीं पर स्वाहानन्दजी ने पूछा, ''आज सन्ध्या को क्या आप कुछ व्याख्यान देंगे?'' वे तत्क्षण सहमत हो गये। इस दीर्घ विमानयात्रा के बाद उनको आराम की विशेष आवश्यकता थी। किन्तु महाराज इस ओर कोई ध्यान न देकर अविलम्ब व्याख्यान के लिए सहमत हो गये।

२२ अगस्त, १९८८ ई. को महाराज डिज्नीलैण्ड देखने गये। बाद में वहीं से सन्ध्या समय ट्रबूको पहुँचे। डिज्नीलैण्ड के पार्किंग में बहुत गड़बड़ी हो गयी। कृष्णानन्द भूल गया कि उसने गाड़ी कहाँ पार्क की थी, जिसके कारण गाड़ी खोजने में कई घण्टे लगे। मैं ४ बजे ट्रबूको पहुँच कर देखा कि महाराज का भोजन अभी तक नहीं हुआ है। किसी प्रकार भोजन का कुछ कौर अपने मुँह में डालकर महाराज लाईब्रेरी हॉल में व्याख्यान देने चल दिये। स्वाहानन्दजी अस्वस्थ होने के कारण अस्पताल में भर्ती थे। मैंने श्रोताओं से महाराज का परिचय कराया। मैंने श्रीमाँ की एक प्रसिद्ध उक्ति का उल्लेख करते हुए कहा, ''Ivory (हाथी का बाहरी दाँत) बहुत मूल्यवान होता है और उस ivory को यदि gold (सोने) से मढ़वा दिया जाये, तो वह और भी अधिक मूल्यवान हो जाता है। उसी प्रकार, ये एक उच्च कोटि के संन्यासी हैं तथा साथ ही बहुत विद्वान भी हैं...।'' महाराज मेरी बातों को अच्छी तरह से नहीं सुन पाये। Gold (सोना) की जगह coal (कोयला) सुन लिये। व्याख्यान के आरम्भ में महाराज ने कहा, ''मेरा हृदय ivory के जैसा सफेद है तथा शरीर का रंग काला है इसलिए चेतनानन्द ने कहा, 'Ivory is covered with coal...।' '' मैं तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। बाद में मैंने महाराज से कहा, ''मैंने कहा था gold और आपने सूना coal. आपने सबके सामने मुझे लज्जित कर दिया।'' ''ऐसा क्या?'' – यह कहकर महाराज हो, हो करते हुए हँसने लगे। उस सरल हँसी को मैं कभी भी नहीं भूल पाऊँगा। इससे मेरा दुख दूर हो गया। **(क्रमश:)**

संसार में कहीं भी जाओ, अपनी माँ और भारतमाता को न भूलो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

संसार में कहीं भी जाओ, अपनी माँ और भारत माता को कभी न भूलो। बचपन में ही बच्चों को सभी आदर्श की बातों को सीखाना चाहिए। तभी बच्चों में यह बोध जगेगा कि माता-पिता ने मुझे जन्म दिया, बड़ा किया, तो हमें भी माता-पिता की सेवा करनी है। यदि हम सेवा नहीं करेंगे, तो यह बहुत बड़ा पाप है। वृद्ध लोग प्रेम ही चाहते हैं। बचपन से ही बच्चों को दादा-दादी, वृद्ध, वरिष्ठ लोगों के प्रति प्रेम करना, श्रद्धा करना, उनकी सेवा करना बताना चाहिए। वे संसार में आदर्श बनें, संसार में आवश्यक कर्तव्य-पालन करें और भगवान से प्रेम करें।

जीवन में हमेशा सावधानी से रहो। चरित्रवान बनो। बाहर की चकाचौंध को मत देखो। संसार में कीचड़ भी रहता है, उस कीचड़ में हमें नहीं फँसना है।

संसार का कोई भी सुख तात्कालिक रहता है, आध्यात्मिक सुख हमेशा के लिए रहता है। अपने आप पर विजय, यही जीवन का उद्देश्य है। मन जो कहता है, वह नहीं करना है। क्योंकि हमारा मन बहुत चंचल है, वह सदा सही निर्णय नहीं करता है। इसलिये विवेक से विचार करना चाहिए और तब उसे करना चाहिए। हमेशा आदर्श जीवन बिताना चाहिए। हम स्वयं अच्छा जीवन जीकर अपने बच्चों को जीवन का अच्छा रास्ता बता सकते हैं। जीवन का यह परम सत्य है कि संसार में सब वस्तुएँ पुरानी हो जाती हैं, उसमें रस नहीं रहता है, लेकिन भगवान और उनकी लीलाएँ कभी पुरानी नहीं होती हैं। इसलिए सबको जीवन की शुभ दिशायें बतानी चाहिए।

इंद्रियों के अधीन जब हम हो जाते हैं, तब हम भगवान की भी नहीं सुनते हैं। संसार में बहुत-से सम्पन्न लोग हैं, वे इंद्रियों के दास हैं। संयम उनमें बिल्कुल नहीं है। गुरु की बात न मानने से कैसी दुर्गति होती है, यह हम देख रहे हैं।

जीभ ही हमारा मित्र और शत्रु है, जिसका एक कार्य बोलने का और एक खाने का है। अत: हमें खाने और बोलने में संयम रखना है, तब हम सुखी रहेंगे। भोजन भी स्वस्थ जीवन जीने के लिये करना है। खाने में बहुत संयम रखना पड़ता है। असंयमित भोजन, निद्रा सब तरह का भोग आदमी को बीमार बनाता है। इसमें संयम ही रखना है। जो अधिक भोजन करता है वह अगले जन्म में गेंडा होता है और जो चटपटा खाना खाता है, उसे कुत्ते का जन्म मिलता है। ये सब करने से दूसरों को बहुत कष्ट नहीं होता, कष्ट तो हमको ही होता है। हमें अपने जीवन के लिये कुछ करना है।

हमलोगों को सामान्य जीवन में संयम रखने का प्रयत्न करना है। सर्वधर्मो के लोगों के लिए उनका शरीर ही साधना करने का पहला यंत्र है। अत: शरीर को स्वस्थ रखें। ये सब अच्छा सोचना भगवान ने हमारे हाथ में दिया है। संसार का सब सुख-दु:ख हमारे ही हाथ में है। सब मन का ही रोग है। हमारा जीवन सुधरना चाहिए। मन को संसार से हटाकर भगवान में लगाना है। एक बात ध्यान में रखनी है कि अपने दुख के कारण हम ही हैं। कुछ बीमारियाँ बाहर से आती हैं, उसको भी हम संयम से दूर कर सकते हैं। इसीलिए संयत आहार, संयत विहार और किसी भी बात की अति नहीं करनी चाहिए। अति करोगे तो दुख में मरना पड़ेगा। ये बात बार-बार मन में सोचना चाहिए। यदि अपना दुख कम करना है, तो उसके लिये एक ही उपाय है – भगवान का नाम-जप और प्रार्थना।

गुरु के उपदेश का यथार्थ पालन करना ही हमारी साधना है। गुरुमंत्र का नाम-जप भीतर से मन-प्राण से करना चाहिए। गुरुमंत्र का जप व्यक्ति के व्यक्तित्व और गरिमा को बढ़ाता है। भगवान का नाम-चिन्तन – इसमें ही हमारी गरिमा है। हमारा सबका प्राण है – ईश्वर-नाम और उनमें अचल विश्वास। OOO

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय संचेतना

डॉ. राघवेन्द्र शर्मा

अध्यक्ष, संस्कृत साहित्य विभाग शासकीय दूधाधारी श्रीराजेश्री महन्त वैष्वणदास स्नातकोत्तर संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर

सर्वप्रथम मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि संचेतना क्या है और उसका राष्ट्र के साथ क्या सम्बन्ध है? संचेतना प्रत्येक जीव के अन्त:करण में रहनेवाली वह चेतना है, जो उसे परस्पर एक-दूसरे के साथ हृदय से जोड़ती है, सतत हित करने में प्रयत्नशील रहती है। राष्ट्र की भौगोलिक सीमा में विद्यमान समस्त जीव-जगत के प्रति आत्मीय संवेदना की अनुभूति और तदात्म्य सम्बन्ध राष्ट्रीय संचेतना की आवश्यक शर्त है। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि क्रौंच पक्षी की मृत्यु से शौकाकुल क्रौंची के करुण विलाप से विह्वल होकर व्याध को श्राप देते हैं 'मा निषाद...'।

यह घटना लौकिक संस्कृत साहित्य की उत्पत्ति का हेतु बनती है और रामायण की रचना करते हुए आदिकवि वाल्मीकि भारतीय समाज के समक्ष समस्त सद्गुणों से विभूषित एक आदर्श राष्ट्रनायक श्रीराम का चरित्र निरुपण करते हैं। अत: संचेतना प्रत्येक जीव में रहनेवाली वह भावना है, जो सद्गुणों से युक्त, लोक का उपकार करनेवाली, मातृभूमि का उत्कर्ष चाहनेवाली, जगत् का संरक्षण करनेवाली, राष्ट्र के शत्रुओं का संहार करनेवाली, राष्ट्रहित करनेवाली, जन्मभूमि से प्रेम करनेवाली, स्वयं का उत्कर्ष चाहनेवाली, सच्चरित्र का निर्माण करनेवाली, राष्ट्र को गौरव प्रदान करनेवाली, राष्ट्र की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि प्रवृत्तियों का विकास और उन्नति की कामना करनेवाली होती है। उसे ही राष्ट्रीय संचेतना कहते हैं। इसका समग्र संस्कृत साहित्य में उल्लेख मिलता है। संस्कृत साहित्य में वर्णित राष्ट्रीय संचेतना को वैदिक साहित्य, लौकिक संस्कृत साहित्य और आधुनिक संस्कृत साहित्य की दृष्टि से तीन स्तरों पर व्याख्यायित कर सकते हैं।

वैदिक साहित्य : वैदिक और लौकिक भेद से संस्कृत साहित्य के दो भाग हैं। अपौरुषेय वैदिक साहित्य को उसको कहते हैं, जिसे सर्व प्राचीन साहित्य होने का गौरव प्राप्त है, जिसके अन्तर्गत वेदादि की गणना की जाती है। वैदिक साहित्य में ऋषिगण समृद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, शक्तिशाली, शत्रुओं से सुरक्षित, स्वस्थ, शिक्षित और सुन्दर राष्ट्र की कामना देवताओं से करते हैं। अथर्ववेद के राष्ट्राभिवर्धनसूक्त में राष्ट्र के समस्त प्राणियों की धन-सम्पत्ति, आरोग्यादि की वृद्धि, समस्त जीवों को प्रताड़ित करनेवाले और राष्ट्र-शत्रुओं का संहार करने की इच्छा एवं राष्ट्र की वृद्धि आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

वैदिक ऋषियों द्वारा राष्ट्र को सुसम्पन्न एवं शक्तिशाली बनाने के लिये समस्त प्राणियों में वैर को छोड़कर समभाव को धारण करने के लिये साथ-साथ चलने, बोलने, समान चिन्तन करने, रक्षा करने, पालन करने, विद्या सम्बन्धी सामर्थ्य को प्राप्त करने, विद्या द्वारा तेजस्विता को धारण करने एवं परस्पर द्वेष-भाव को त्यागने के लिए प्रेरित किया गया है, जो राष्ट्रीय संचेतना के लिये अत्यावश्य है।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।।२।
सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।३।।

लौकिक साहित्य : राष्ट्रीय संचेतना के अन्तर्गत सभी मनुष्यों का दायित्व राष्ट्र के समस्त प्राणियों की रक्षा करना होता है। भारत के एक ऋषि वाल्मीकि तो राष्ट्र के एक क्रौंच पक्षी की मृत्यु से शोकाकुल क्रौंची के करुण विलाप से विह्वल होकर व्याध को शाप देते हैं -

मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।४।।

यह घटना लौकिक संस्कृत साहित्य की उत्पत्ति का हेतु बनती है। इसके बाद ही आदिकवि वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण की रचना की। उक्त आख्यान राष्ट्रीय संचेतना का ज्वलन्त उदाहरण है। संस्कृत साहित्य में कालिदास आदि महाकवि स्व रचनाओं के द्वारा विविध प्रसंगों से सहृदय समाज को राष्ट्रीय संचेतना के प्रति प्रेरित करते हुए प्रतीत होते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में कालिदास राष्ट्र के प्रति राजा के उत्तरदायित्व को परिभाषित करते हुए कहते हैं – 'राजा जो दण्ड धारक होता है, जो कुमार्गगामी को शासित करता है, विवाद को शान्त करता है, प्रजा की रक्षा करता है और पालन-पोषण करता है, अत: राजा ही प्रजा

का सच्चा बन्धु होता है –

नियमसि कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम्
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।।५।।

ऐसा राजा का राष्ट्र सदा अभिवर्धन करता है। महाकवि भास ने राष्ट्र के प्रति नागरिकों के उत्तरदायित्व को परिभाषित करने के लिये प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटक की रचना की है। जहाँ पत्नी अपने पति को और मन्त्री अपने राजा उदयन को चक्रवर्ती सम्राट् बनाने के लिये प्रतिज्ञा करता है। महाकवि माघविरचितशिशुपालवधम् महाकाव्य में श्रीकृष्ण राष्ट्र के नागरिकों को शिशुपाल के आतंक से बचाने हेतु शिशुपाल का वध करके उन्हें निर्भय कर देते हैं। दशकुमारचरितम् गद्यकाव्य में राजवाहन मन्त्री एवं अन्य राजकुमारों को एकत्रित कर संघ की शक्ति से राष्ट्र के शत्रु मालव नरेश का दमन करते हुए राष्ट्रीय संचेतना हेतु संघशक्ति की उपयोगिता को सिद्ध करता है। इन उद्धरणों से सिद्ध होता है कि राष्ट्रीय संचेतना हेतु लौकिक साहित्य सदा ही प्रेरक रहा है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य : आधुनिक संस्कृत साहित्य राष्ट्रीय संचेतना का नवजागरण काल माना जाता है। अभिनव रचनाधर्मिता को आधार बनाकर आधुनिक संस्कृत-कवियों ने अपनी कृतियों के माध्यम से लोक में राष्ट्रीय संचेतना को जागृत करने का अभिनव प्रयास किया है। वे अभिनव प्रवृत्तियाँ हैं - चरितकाव्य, राष्ट्राधारित काव्य, अवदानकाव्य, यात्रावृत्तान्तकाव्य, तीर्थकाव्य, बालसाहित्य, उपन्यास, कथा साहित्य, संस्कृतानुवाद आदि। चरितकाव्य के अन्तर्गत भारत के वीर महापुरुषों के चरित को लोकजन-जागरण के हेतु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। जैसे – ब्रह्मानन्द शुक्ल का श्रीगान्धिचरितम्, श्रीनेहरूचरितम्, श्रीसाधुशरणमिश्र का गाँधिचरितम्, श्रीधरभास्करवर्णेकर का शिवराज्योदयम्, सत्यव्रत शास्त्री का इन्दिरागान्धिचरितम्, पं. रामकुबेरमालवीय का श्रीमालवीयचरितम्, पं. त्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर का श्रीस्वामिविवेकानन्दचरितम्, पं. विश्वनाथ केशव छत्रे का सुभाषचरितम्, डॉ. जी. बी. पलसुलेका वैनायकम् (वीरसावरकरचरितम्), पं. उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी का क्षत्रपतिचरितम्, श्री सुबोधचन्द्रपन्त का झाँसीश्वरीचरितम् आदि के माध्यम से आधुनिक संस्कृतकवियों ने राष्ट्रनायकों के उच्च चरित्रादर्शों द्वारा लोक में राष्ट्रीयता की भावना का संचार किया है। राष्ट्राधारित काव्य के अन्तर्गत डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी का स्वातन्त्रसम्भवम् महाकाव्य, श्री ओगेट परीक्षित का श्रीमत्प्रतापपरायण महाकाव्य, रमाकान्त शुक्ल का भाति मे भारतम्, आदि का समावेश होता है, जो भारतवासियों के हृदयों में राष्ट्रीय संचेतना का संचार करने के लिए पाथेय सिद्ध हुए। अवदान काव्यान्तर्गत महापुरुषों द्वारा राष्ट्र कल्याण एवं जनजागरण की भावना से कृतकार्यों को स्थान दिया गया है। जिसमें प्रमुख है – डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी का हरिहरावदान काव्यम्, जिसमें श्री स्वामी करपात्रीजी का लोकाभ्युदय विषयक अवदान वर्णित है। यात्रावृत्तान्तम् काव्यान्तर्गत अनेक आधुनिक कवियों ने अपनी यात्राओं का काव्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है, जिनके द्वारा भारत देश के सौन्दर्य, सांस्कृतिक वैभव, आध्यात्मिकोन्नति, राजनैतिक विचारधारा, आर्थिक सम्पन्नता, धार्मिकोत्थान आदि के वर्णनों से जनमानस को अवगत कराया है। जिसमें प्रमुख है – पं. वासुदेव शास्त्रि का अद्यापि आदि। तीर्थकाव्यों के द्वारा कवियों ने भारतवर्ष के तीर्थों के भौगोलिक, आध्यात्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक महत्त्व को चरितार्थ किया है, जिसमे प्रमुख है – प्रो. रहसविहारी द्विवेदी द्वारा रचित तीर्थभारतम् आदि। इसी प्रकार आधुनिक संस्कृतकवियों ने बालकों में बालसाहित्य के माध्यम से एवं युवाओं में कथासाहित्य और उपन्यास आदि के माध्यम से राष्ट्रीय संचेतना को उद्भासित करने का अनूठा प्रयास किया है। ○○○

पृष्ठ ३७५ का शेष भाग

ऐसी मान्यता है कि इस मंदिर में जो भी भक्त जिस कामना से आता है, उसे वह प्राप्त हो जाता है, यहाँ तक की तत्काल मृत्यु भी।

श्रावण मास में हर वर्ष एक सप्ताह तक यहाँ भव्य मेला लगता है, जिसमें पार्थिव-पूजन का कार्य विशेष रूप से सम्पन्न होता है। यहाँ पहुँचकर ऐसा प्रतीत होता है कि निश्चय ही हम शिवपुरी में पहुँच गये हैं, जहाँ केवल शिव ही शिव विराजित हैं, यहाँ तक की वृक्षों के रूप में भी। हो भी क्यों नहीं, जहाँ पर भगवान 'यागीश्वर' की त्रिकाल पूजा का हजारों वर्षों से नियमित क्रम चला आ रहा हो, वह स्थान तो स्वत: ही पवित्र और बैकुण्ठ तुल्य हो जाता है। ○○○

क्षमा का अद्भुत आदर्श

त्रिभुवन राम शर्मा, रायपुर

संसार में क्षमा के अनेकों उदाहरण हैं। द्रौपदी ने भी अपने पाँच पुत्रों के हन्ता अश्वत्थामा को शक्तिहीन कर क्षमा किया था। किन्तु ऋषि वशिष्ठ के क्षमा का यह अद्भुत आदर्श विश्व के इतिहास में अंकित है। जिन्होंने अपने सौ पुत्रों के हत्यारे विश्वामित्र को ब्रह्मज्ञान से विभूषित किया। यह घटना इस प्रकार है।

चारों ओर ऋषियों के आश्रम थे। एक-एक आश्रम नन्दन वन को मात देता था। अद्भुत शोभा थी वहाँ की! ऐसी ही एक रात थी, जब चाँदनी छिटकी हुई थी। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ अपनी सहधर्मिणी अरुन्धती से कह रहे थे – देवी! ऋषि विश्वामित्र के यहाँ जाकर थोड़ा नमक की भिक्षा माँग लाओ। इस बात से विस्मित होकर अरुन्धती ने कहा – कैसी आज्ञा दी आपने? जिसने मुझे सौ पुत्रों से वंचित किया ... कहते-कहते उनका गला भर आया। आप उसी के आश्रम में लवण-भिक्षा करने के लिए कह रहे हैं? धीरे-धीरे ऋषि के चेहरे पर एक प्रकाश आता गया। हृदय से यह वाक्य निकला – लेकिन देवी, मुझे उनसे प्रेम है।

अरुन्धती विस्मित रह गईं। उन्होंने कहा – आपको उनसे प्रेम है, तो एक बार उन्हें ब्रह्मर्षि कह दिया होता? इससे सारा जंजाल मिट जाता और मुझे अपने सौ पुत्रों से हाथ न धोना पड़ता? उन्होंने कहा – मुझे उनसे प्रेम है, इसीलिए उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहता। उनके ब्रह्मर्षि होने की आशंका है।

आज विश्वामित्र क्रोध के मारे ज्ञान-शून्य हैं। उन्होंने निश्चय किया है कि आज भी वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि न कहें, तो उनके प्राण ले लेंगे।

इधर अपना संकल्प पूरा करने के लिए विश्वामित्र हाथ में तलवार लेकर कुटी से बाहर निकले। उन्होंने वशिष्ठ की उपर्युक्त सारी बातचीत सुन ली। वे सोचने लगे, आह! क्या कर डाला मैंने! बिना जाने कितना अन्याय कर डाला! बिना जाने किसी के निर्विकार चित्त को व्यथा पहुँचाने की कोशिश की! पश्चात्ताप से हृदय जल उठा। दौड़ते हुए गये और वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़े। कुछ देर तो मुँह से बोल न पाए। जब अपने आपे में आये तो विश्वामित्र ने कहा – क्षमा कीजिए! यद्यपि मैं क्षमा के योग्य नहीं हूँ। इधर वशिष्ठ ने कहा – मैं कभी झूठ नहीं बोलता। आज तुमने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कर लिया है।

विश्वामित्र ने कहा – आप मुझे ब्रह्मविद्या दान दीजिए। वशिष्ठ बोले – आप अनन्त देव (शेषनाग) के पास जाइए, वे ही आपको ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देंगे। विश्वामित्र वहाँ जा पहुँचे, जहाँ अनन्त देव पृथ्वी को मस्तक पर धारण किए हुए थे।

अनन्त देव ने कहा – मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान तभी दे सकता हूँ, जब तुम इस पृथ्वी को सिर पर धारण कर सको। तपोबल के गर्व से विश्वामित्र ने कहा, आप पृथ्वी को छोड़ दीजिये। मैं उसे धारण कर लूँगा। अनन्त देव ने कहा – ठीक है और पृथ्वी घूमते-घूमते गिरने लगी। विश्वामित्र ने कहा – मैं अपनी सारी तपस्या का फल देता हूँ। पृथ्वी रुक जाओ। फिर भी पृथ्वी स्थिर नहीं हो पाई।

अनन्त देव ने कहा – पृथ्वी को धारण करने के लिये तुम्हारी तपस्या काफी नहीं है, उसका फल अर्पण करो। विश्वामित्र ने कहा – देव! क्षण भर के लिये वशिष्ठ के साथ रहा हूँ और धरती स्थिर हो गई। तब विश्वामित्र ने कहा – देव! अब मुझे आज्ञा दें। अनन्त देव ने कहा – अरे मूर्ख विश्वामित्र! जिसके क्षण भर के सत्संग का फल देकर तुम समस्त पृथ्वी को धारण कर सके, उन्हें छोड़कर मुझसे ब्रह्मज्ञान माँग रहे हो? विश्वामित्र क्रुद्ध हो गए। वे शीघ्रता से वशिष्ठ के पास पहुँचे और उनसे कहा – आपने मुझे इस तरह क्यों ठगा? वशिष्ठ बोले – अगर मैं उसी समय तुम्हें ब्रह्मज्ञान दे देता, तो तुम्हें विश्वास नहीं होता। इस अनुभव के बाद तुम विश्वास करोगे। उसके बाद वशिष्ठजी ने विश्वामित्र को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्रदान की।

यह प्रसंग वशिष्ठजी के महान चरित्र को दर्शित करता है। ब्रह्मज्ञ पुरुष का किसी से द्वेष नहीं होता। उन्होंने अपने सौ पुत्रों के हत्यारे विश्वामित्र को क्षमा करके उन्हें ब्रह्मज्ञान हेतु योग्य अधिकारी हो जाने पर उन्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी। ○○○

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में

लेखक – स्वामी निखिलेश्वरानन्द
प्रकाशक – रामकृष्ण मठ, रामकृष्ण मार्ग, धन्तोली, नागपुर – ४४० ०१२
पृष्ठ- १३२, मूल्य – ३०/-

आधुनिक मानव विभिन्न विधाओं में प्रगति कर रहा है। वह विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी आदि में अद्भुत विकास कर रहा है। वह विश्व में विकसित राष्ट्र का आधुनिक नागरिक होने के लिए प्रयत्नशील है। आधुनिक मानव जल, थल और नभ में विचरण कर रहा है। मंगलयान, चन्द्रयान का प्रक्षेपण कर रहा है। अन्तरिक्ष में निवास की कल्पना साकार कर रहा है। बचपन में माँ से सुने हुए चन्दामामा के यहाँ रैन बसेरा बनाकर वहाँ के निवासी होने का स्वप्न देख रहा है। लेकिन उसकी मानसिक शान्ति चली गई। उसका चित्त विक्षिप्त हो गया है। उसके मन में शान्ति नहीं है। स्वाभाविक है, यदि मन अशान्त हो, तो कहीं सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

अशान्तिनाशक और शान्तिप्रदायक व्यावहारिक बिन्दुओं पर विचार करते हुए रामकृष्ण आश्रम, राजकोट के सचिव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने 'आधुनिक मानव शान्ति की खोज में' नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में १३२ पृष्ठ हैं और उप शीर्षकों में विभक्त है। स्वामीजी ने विभिन्न उपशीर्षकों में कई कहानियों, घटनाओं और दृष्टान्तों, नीतिवाक्यों, सूक्तियों और शास्त्रवाक्यों के द्वारा विषय को स्पष्ट समझाया है। जैसे – ताल भंग न हो पाये, जो कुछ है, सो तू ही है, प्रत्येक परिस्थिति में शान्त रहने की कला, दुख और विपत्ति के पहाड़ टूट पड़ें तब, क्रोध रूपी चाण्डाल मस्तक पर सवार हो तब, परिवार में लड़ाई-झगड़े हों तब, आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होती, नचिकेता ने मृत्यु का रहस्य प्राप्त किया, निराशा के घर बादल घिर जाएँ, तब क्या करें, आधुनिक मानव और समन्वयात्मक योग इत्यादि अन्य बहुत-से उपशीर्षकों से यह पुस्तक संयुक्त है और मानव को विषम परिस्थिति में धैर्यपूर्वक उससे बचने और शान्तिमय जीवन-यापन का पथ-प्रदर्शन करती है। अपने सुखमय जीवन हेतु प्रत्येक व्यक्ति को इसका पठन करना चाहिए। इस जीवनोपयोगी रचना हेतु विश्व सदा स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज का कृतज्ञ रहेगा। ○○○

मेरे गुरु स्वामी विवेकानन्द जैसा उन्हें देखा

लेखिका – भगिनी निवेदिता
अनुवादक – डॉ. अवधेश प्रधान, मो. ८४००९ २५०८२
प्रकाशक – साहित्य भंडार, ५०, चाहचन्द (जीरो रोड), प्रयागराज - २११००३, पृष्ठ- २२४, मूल्य – ५५०/-

युगाचार्य, युगनायक विश्वप्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व की झलक देखने जिज्ञासुओं को स्वामीजी की मानसकन्या और उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता के साहित्यों का अवलोकन करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के भव्य उज्ज्वल प्रखर व्यक्तित्व की धारणा निवेदिता की लेखनी से व्यक्त शब्दों से होती है। एक ओर गुरुगत प्राण, गुरुचरणसमर्पिता भगिनी निवेदिता के शुद्धचित्त में गुरु-कृपा का प्रकाश अभिव्यक्त होता है, तो दूसरी ओर प्रखर प्रज्ञाभूषिता निवेदिता की विश्लेषणात्मिका बुद्धि उसे लेखनी से व्यक्त करती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'द मास्टर ऐज आइ सा हिम' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें स्वामी विवेकानन्द जी के विभिन्न आयामों के दर्शन होते हैं। निवेदिता ने स्वामीजी के साथ देश-विदेश के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया और इस तरह उनके सर्वाधिक निकट रहकर उनके व्यक्तित्व से परिचित होती हैं। उस महान व्यक्तित्व के आयामों का उद्घाटन यह पुस्तक करती है। इस महान ग्रन्थ का अनुवाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर श्री अवधेश प्रधान जी ने किया है। श्री प्रधानजी रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित हैं। सुयोग्य उत्कृष्ट वक्ता हैं। यह २२४ पृष्ठों की पुस्तक २७ शीर्षकों और ४ परिशिष्टों में विभक्त है, जिनमें स्वामी विवेकानन्द के प्रति निवेदिता की श्रद्धा-पुष्पांजलि दृष्टिगोचर होती है। कहते हैं कि १८९५ में स्वामीजी को लन्दन में पहली बार देखकर और १९०२ में उनके महाप्रयाण तक अपनी आँखों देखी गुरुदेव – स्वामी विवेकानन्द की छवियाँ, उनके अनूठेपन और वैविध्य का चित्रण जिस प्रकार निवेदिता ने अंकित किया है, वैसा अन्य किसी से सम्भव नहीं हुआ।

स्वामी विवेकानन्द जी के व्यक्तित्व से ज्ञात होने हेतु सबको इसका अध्ययन करना चाहिए। इस अद्भुत ग्रन्थ से हिन्दी जगत को परिचय कराने हेतु डॉ. अवधेश प्रधान जी को कोटिश: धन्यवाद और शुभकामनाएँ। ○○○

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा कोरोना वायरस-त्रासदी राहत-कार्य किया गया, जिसमें निम्नलिखित केन्द्रों ने आवश्यकतानुसार लोगों में चावल, दाल, आटा, चिउड़ा, आलू, चीनी, तेल, नमक, साबून, केक, बिस्कुट, चायपत्ती, फुडपैकेट, खिचड़ी, सत्तू, ग्लूकोज, फेसमास्क, हैन्डवास सेनेटाइजर आदि अन्य आवश्यक सामग्रियों का वितरण किया –

अंडमान निकोबार में पोर्टब्लेयर, **आन्ध्रप्रदेश** में कड़प्पा, तिरुपति, विजयवाड़ा, विशाखापत्तनम्, **अरुणाचल प्रदेश** में अलांग, नरोत्तमनगर, **असम** में डिबरूगढ़, गौहाटी, करीमगंज, सिल्चर, **बिहार** में छपरा, कटिहार, पटना, **छत्तीसगढ़** में बिलासपुर, नारायणपुर, **गुजरात** में लिमड़ी, पोरबन्दर, राजकोट, वड़ोदरा, **हिमाचल प्रदेश** में शिमला, **जम्मू और कश्मीर** में जम्मू, श्रीनगर, **झारखण्ड** में देवघर, घाटशिला, जमशेदपुर, जामतारा, राँची मोराबादी, राँची टी.बी. सेनीटोरियम, **कर्णाटक** में बेलगाँव, बेंगलोर, दावनगिरि, मेंग्लोर, मैसूर, पोन्नमपेट, शिवनहली, **केरला** में हरिपाद, कालाडी, कयमकुलम, कोयीलांडी, कोझीकोड, पाला, तिरुवल्ला, त्रिसुर, **मध्यप्रदेश** में इन्दौर, **महाराष्ट्र** में औरंगाबाद, मुम्बई, नागपुर, पूना, **मणिपुर** में इम्फाल, **मेघालय** में शिलाँग, सोहरा, **नई दिल्ली** में दिल्ली, **उड़िसा** में भुवनेश्वर, कटक, हातामुनिगुड़ा, कोठार, पुरी मठ, पुरी मिशन, **राजस्थान** में जयपुर, **तमिलनाडू** में चेंगलपेटू, चेन्नई मठ, चेन्नई मिशन आश्रम, चेन्नई स्टूडेन्ट होम, कोयम्बटुर मठ, कोयम्बटुर मिशन, काँचीपुरम्, मदुरई, मलियनकरणी, नटरमपल्ली, उटकमण्ड, रामनाथपुरम्, सलेम, येलागिरि, **तेलंगाना** में हैदराबाद, **त्रिपुरा** में कैलाशहर, अगरतल्ला, **उत्तर प्रदेश** में कानपुर, लखनऊ, प्रयागराज, वाराणसी सेवाश्रम, वृन्दावन, **उत्तराखण्ड** में अलमोड़ा, देहरादून, कनखल, ऋषिकेश, उत्तरकाशी, **पश्चिम बंगाल** में अद्वैत आश्रम, आँटपुर, आसनसोल, बागदा, बागबाजार, बाजेप्रतापपुर, बलराम मन्दिर, बामनमुड़ा, बाँकुड़ा, वाराहनगर मठ, वाराहनगर मिशन, बारासात, बेलघरिया, चंडीपुर, कोन्टई, कूच बिहार, काशीपुर, गदाधर आश्रम, गड़वेत्ता, गोलपार्क, गौरहाटी, गुराप, मायलइच्छापुर, जलपाईगुड़ी, जयरामबाटी, झाड़ग्राम, कामारपुकुर, काँकुड़गाछी, कसुन्दिया, कथामृत भवन, लालगढ़, मालदा, मनसाद्वीप, मेदिनीपुर, मेखलीगंज, नरौरा, नरेन्द्रपुर, पुरुलिया, राहाड़ा, राजारहाट विष्णुपुर, रामहरिपुर, सारदापीठ, सारगाछी, सरिषा, श्यामपुकुरबाटी, श्यामसायर, सिकरा-कुलीनग्राम, सींथी, स्वामीजी का पैतृकनिवासभवन, टाकी, तमलुक, बेलूड़ मठ (बागानचरा और नवद्वीप आश्रम के द्वारा)

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों के द्वारा भी राहत-कार्य किए गये –

बांगलादेश में बागेरहाट, ढाका, दिनाजपुर, फरीदपुर, हबीबगंज, जेस्सोर, मेमनसिंह, **दक्षिण अफ्रिका** में डरबन, फोनीक्स, **श्रीलंका** में कोलम्बो, बेट्टीकालो, **जाम्बिया** में लुसाका।

कोरोना राहत-कार्य के अतिरिक्त रामकृष्ण मठ-मिशन के केन्द्रों द्वारा हुए अन्य राहत-कार्य –

अग्नि-राहत कार्य – १४ अप्रैल, २०२० को अचानक करीमगंज जिले में आग लग जाने से ४ परिवारों का सब कुछ जलकर भस्म हो गया। **रामकृष्ण मिशन, करीमगंज** ने १५ अप्रैल को पीड़ित परिवारों को चावल, दाल, आलू, तेल, नमक, मूरा, बिस्कुट, चायपत्ती, दूध, धोती, साड़ी, कंबल, तौलिया, फेसमास्क, साबून वितरित किया।

बाढ़-राहत कार्य – रामकृष्ण मिशन, बेलगवी ने अतिवृष्टि के कारण बेलगवी शहर में आयी बाढ़ आपदा से त्रस्त लोगों में चावल, आटा, दाल, चिउड़ा, ज्वार, बिस्कुट, चायपत्ती, चीनी, कंबल, सुइटर, लुंगी, बालटी, मग, चटाई, मोमबत्ती, माचीस, थाली, सर्फ, साबून, दन्तमंजन, टूथब्रस, स्कूल बैग, काँपी आदि वितरित किये।

सूखा-राहत कार्य – प्रधान कार्यालय बेलूड़ मठ और अन्य केन्द्रों द्वारा विभिन्न स्थानों में निम्नलिखित सामग्रियाँ वितरित की गईं – **बामनमुड़ा** – २००० टीशर्ट, पैजामा, जैकेट सोइटर सर्ट का कपड़ा, **कूच विहार** – १००० टॉप, ट्रूजर, स्वेटर, **देहरादून** –६०० जैकेट, **घाटशिला** – ५०० साड़ी, **बेलूड़ मठ** – २०० कंबल, **इम्फाल** – ३००० टीशर्ट, स्वेटर, टॉप, ट्रूजर, शर्ट, **मालदा** – ५०० कंबल, **पूर्णिया** – २०० शर्ट, ट्रूजर, ब्लेजर, **पुरुलिया** – १००० शर्ट, ट्रूजर, जैकेट, सोइटर, कंबल, **राँची सेनीटोरियम** – ५०० कंबल, **श्यामलाताल** – ९००० टीशर्ट, ट्रूजर, कंबल, सोयटर और **लुसाका** में **जाम्बिया** – १०० किलो मक्का का आटा इत्यादि।